❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष ५ { गौराब्द ४७२, मास—हृषिकेश १६, वार—अनिरुद्ध
बुधवार, ३१ भाद्रपद, सम्वत् २०१५, १७ सितम्बर १९५८ } संख्या ४

श्रीश्रीजन्माष्टमी-व्रत-कृत्यम्

नारद उवाच—

जन्माष्टमी-व्रतं ब्रूहि व्रतानां व्रतमुत्तमम् ।
व्रत-पूजा-विधानञ्च संयमस्य च साम्प्रतम् ॥
उपवास-पारणयोः सुविचार्यं वद प्रभो ॥१,२॥

नारायण उवाच—

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा निर्माय सूतिका गृहम् ।
लौह-खड्गं वह्निजालैर्युक्तं रक्षकसंघकैः ॥ ८ ॥
तत्र द्रव्यं बहुविधं नाड़िच्छेदन-कर्त्तनीयम् ।
धात्रीस्वरूपां नारीञ्च यत्नतः स्थापयेद्बुधः ॥ ९ ॥
पूजाद्रव्याणि चारूणि सोपचाराणि षोड़श ।
फलान्यष्टौ च मिष्टानि द्रव्यान्येव हि नारद ॥१०॥
घटमारोपणं कृत्वा सम्पूज्य पञ्च देवताः ।
घट-आवाहनं कृत्वा श्रीकृष्णं परमेश्वरम् ॥१२॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं शृणु वक्ष्यामि नारद ।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं कुमाराय महात्मने ॥१३॥

"बालं नीलाम्बुदाभं अतिशय-रुचिरं स्मेरवक्त्राम्बुजं तं,
ब्रह्मे शानन्त धर्मैः कति कति दिवसैः स्तूयमानं परं यत् ।
ध्यानासाध्यं ऋषीन्द्रैर्मुनि-मनुजवरैः सिद्धसङ्घैरसाध्यं,
योगीन्द्राणामचिन्त्यं अतिशयमतुलं साक्षिरूपं भजेऽहम्" ॥२०॥
ध्यात्वा पुष्पञ्च दत्वा तु तत्सर्वं मंत्रपूर्वकम् ।
दत्वा व्रती व्रतं कुर्याच्छृणु मंत्रं यथाक्रमम् ॥२१॥
सुनन्द-नन्द-कुमुदान् गोपान् गोपीश्च राधिकाम् ।
गनेशं कार्त्तिकेयञ्च ब्रह्माणञ्च शिवं शिवाम् ॥४३॥
लक्ष्मीं सरस्वतीञ्चैव दिक्पालांश्च ग्रहांस्तथा ।
शेषं सुदर्शनञ्चैवं पार्षद प्रवरांस्तथा ॥४४॥
सम्पूज्य सर्वदेवांश्च प्रणम्य दण्डवद्भुवि ।
ब्राह्मणेभ्यश्च नैवेद्यं दत्वा दद्याच्च दक्षिणाम् ॥४५॥
कथाञ्च जन्माध्यायोक्तां (तृतीयोऽध्यायं) श्रृणुयादभक्तिभावतः ।
तदा कुशासने स्थित्वा कुर्याज्जागरणं व्रती ॥४६॥
प्रभाते चाह्निकं कृत्वा सम्पूज्य श्रीहरिं सदा ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च चकार हरिकीर्त्तनम् ॥४७॥
'वर्ज्जनीया' प्रयत्नेन 'सप्तमीसहिताष्टमी' ।

सा सर्वापि न कर्त्तव्या सप्तमीसहिताष्टमी ।
अविद्धायान्तु सर्वायां जातो दैवकीनन्दनः ॥५४॥
वेद-वेदाङ्ग-गुप्तेऽतिविशिष्टे मङ्गले क्षणे ।
व्यतीते पद्मयोनौ च व्रती कुर्याच्च पारणम् ॥५५॥
तिथ्यन्ते च हरिं स्मृत्वा देवासुरार्चनम् ।
'पारणं' पावनं पुंसां सर्वपाप-प्रणाशनम् ॥५६॥

—श्रीब्रह्मवैवर्त्त-पुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे नारायण-नारद-संवादे जन्माष्टमी-व्रतादि-निरूपण-प्रस्तावोऽष्टमोऽध्याये ।

अनुवाद—

देवर्षि नारदने कहा—महर्षि ! समस्त व्रतोंमें उत्तम श्रीजन्माष्टमी-व्रतके सम्बन्धमें मुझे बतलाइये । प्रभो ! इस समय मुझे व्रत, पूजाकी विधि, संयम, उपवास और पारणकी विधिके सम्बन्धमें भलीभाँति समझा कर बतलाइये ॥१, ३॥

महर्षि नारायणने कहा—व्रताचारी पण्डित व्यक्ति जन्माष्टमीके दिन स्नानके पश्चात् नित्यक्रिया करेंगे । उसके बाद एक सूतिका गृह तैयार करके उसमें लोहा, तलवार, आग और रक्षक स्थापन करेंगे तथा उसमें नाना प्रकारके द्रव्य, नाड़ी छेदन करनेकी छुरी और धात्रीके रूपमें एक स्त्रीका भी यत्नपूर्वक स्थापन करेंगे ॥८-९॥

हे नारद ! उसके बाद उस गृहमें षोड़शोपचार-पूजाके द्रव्य* और अष्टफल † तथा अन्यान्य मीठे-मीठे द्रव्योंका भी स्थापन करेंगे ॥१०॥

अनन्तर घट-स्थापन करके (विघ्न दूर करनेके लिये) उसमें पञ्चदेवताओंकी पूजा कर पुनः उसी घटमें परमेश्वर श्रीकृष्णका आह्वान करेंगे ॥१५॥

नारद ! इस सामवेदोक्त ध्यानको सर्वप्रथम ब्रह्माजीने सनत्कुमारको बतलाया था और इस समय मैं तुम्हें बतला रहा हूँ । तुम इसका श्रवण करो ॥१६॥

श्रीकृष्ण बालक रूपमें हैं, उनका कलेवर नवीन और नीलवर्णके मेघके समान अत्यन्त सुन्दर है, मुख-मण्डल खिले हुए कमलके समान अतीव मनोहर है, ब्रह्मा,शिव और अनन्त आदि देववृन्द बहुत दिनों-से निरन्तर उनका स्तव करते हैं, वे बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों और मानवोंके ध्यानासाध्य हैं तथा सिद्धोंके भी असाध्य हैं । वे योगीजनोंके अचिन्त्य अतिशय अतुलनीय और साक्षी स्वरूप हैं, मैं उनका भजन करता हूँ ॥२०॥

*आसन, वस्त्र, पाद्य, मधुपर्क, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय जल, शय्या, गन्ध, पुष्प, नैवेद्य, ताम्बूल, लेप, धूप, दीप, भूषण—ये षोड़शोपचार पूजाके सोलह द्रव्य हैं ।

†जायफल, ककोड़ा (खेखसा), अनार, बेल (श्रीफल), नारियल, जम्बीरी नीबू और कुष्माण्ड—ये अष्ट फल हैं ।

व्रती मनुष्य इस प्रकारसे ध्यान करके पुष्पदान करेंगे और षोडशोपचारके प्रत्येक मंत्रका क्रमानुसार उच्चारण कर दानपूर्वक व्रतका अनुष्ठान करेंगे ॥२१॥

तदनन्तर नन्द, सुनन्द, कुमुद आदि गोप-समूह, गोपीजन, श्रमती राधिका, गणेश, कार्त्तिकेय, ब्रह्मा, शिव, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, दिक्पालगण, ग्रह-समूह, अनन्तदेव, सुदर्शन और श्रीकृष्णके प्रधान-प्रधान पार्षदोंकी यथाविधि पूजा करनी चाहिये। समस्त देवताओंका पूजन कर उन्हें भूमिष्ट दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये और ब्राह्मण-वैष्णवोंको नैवेद्य और दक्षिणा देनी चाहिये ॥४३-४४॥

सप्तमी युक्त अष्टमीका यत्नपूर्वक वर्जन करना चाहिये। रोहिणी नक्षत्र संयुक्त होने पर भी सप्तमी-युक्त अष्टमीका सम्पूर्णरूपसे वर्जन करना चाहिये। देवकीनन्दनने 'सप्तमी अविद्धाय' (सप्तमीविद्धा अष्टमी नहीं) जन्म लिया था ॥५४॥

वेद और वेदार्थमें भी अतिशय गोपनीय और विशिष्ट मङ्गल-लक्षण रोहिणी नक्षत्र बीत जाने पर 'पारण' करना चाहिये। तिथि समाप्त होने पर भगवान् का स्मरण करते हुए भगवद् अर्चनके पश्चात पारण करना चाहिये ॥५५-५६॥

संत (सज्जन) के लक्षण

सत्यसार (३)

सज्जन पुरुषोंका तीसरा लक्षण यह है कि वे 'सत्य-सार' होते हैं। सत्यसार कहनेसे ऐसे पुरुषोंका बोध होता है, जो सत्यसे कभी विमुख नहीं होते। सत्यसे विमुख हुए मनुष्य असाधु या अवैष्णवकी संज्ञा लाभ करते हैं। सज्जन अर्थात् शुद्ध वैष्णवजन ही एकमात्र सत्यसार होते हैं। असत्यको सारहीन समझ कर जिन्होंने निष्कपट होकर केवल सत्यको ही सार समझ कर ग्रहण किया है, वे सत्यसार हैं।

लौकिक निरपेक्षता द्वारा जो वस्तु-धर्मका अस्तित्व उपलब्ध होता है, उसे लोग सत्यकी संज्ञा देते हैं। काम, क्रोध आदिसे युक्त मनुष्य अपनी तात्कालिक प्रवृत्तिसे चालित होकर जिस सत्यका अनुभव करता है, वह उसके लिये तात्कालिक सत्य हो सकता है। किन्तु काम-क्रोध आदि दूर होने पर वह अपनी पूर्व अनुभूत सत्य-प्रतीतिका व्यतिक्रम उपलब्धि करता है। मानव सभ्यताके आदि कालमें आधुनिक जड़-विज्ञान विषयक उपलब्धिका बहुत कुछ अभाव था। प्राचीन ग्रीक-पण्डितों, चीन देशीय ज्ञानियों तथा भारतीय मनीषियोंकी जड़वस्तु सम्बन्धी धारणागत इतिहासका अवलोकन करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने जिसे सत्यके रूपमें अनुभव किया था, आज उनकी वह धारणा अनेक अंशोंमें पलट गयी है। मनुष्य जबतक मनुष्य-समाजकी पूर्व-पूर्व अभिज्ञताओंसे लाभ नहीं उठाता, तबतक उसकी सत्य प्रतीति बहुत ही क्षुद्र होती है। अशिक्षित मनुष्यकी धारणा तथा काम और क्रोधसे युक्त मनुष्यकी सत्य-प्रतीति शिक्षाके प्रभावसे बदल जाती है। तात्कालिक सत्य देश-काल-पात्रके भेदसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणापाटवके कारण असत्य बहुधा सत्य जैसा प्रतीति होता है। पुनः भ्रमादिके दूर होने पर असत्य तिरोहित हो जाता है और सत्य आविर्भूत होकर अज्ञानरूप अंधकारका विनाश कर देता है।

नित्य-सत्य और तात्कालिक सत्यमें भेद है। तात्कालिक सत्यकी खोजमें जीव कभी अन्याभिलाषी हो पड़ते हैं, कभी धर्म-अर्थ-कामरूप फलके अनुसंधान में वे कर्म निपुण पुण्यवान हो पड़ते हैं और कभी मुमुक्षु होनेकी कामनासे पाप-पुण्य दोनोंका परित्याग

कर अहंब्रह्मोपासक मायावादी हो पड़ते हैं। इनको अज्ञानी, कुकर्मी और स्वेच्छाचारी कहा जाता है। इनमेंसे प्रत्येककी सत्य-धारणा भ्रमपूर्ण असम्पूर्ण, तात्कालिक और हेयमिश्र होती है। अप्राकृत भगवद्भक्तोंकी धारणा वैसी हेय नहीं होती है। वे श्रीहरि को ही एकमात्र परम सत्य जानते हैं।

जीव जभी हरिसे विमुख होते हैं, तभी उनमें परम सत्य वस्तु श्रीहरिकी उपलब्धिका ह्रास हो पड़ता है। हरि-विमुखता उनकी अस्मिता और वृत्तिके ऊपर आक्रमण कर उन्हें असत्यमें सत्यका आरोप कराती है। वे कभी आंशिक ज्ञानको सत्य समझ कर हरि-दर्शनसे विमुख हो परमात्माका दर्शन करते हैं। उस समय उनके सत्य दर्शनमें परमात्मा दृष्ट होते हैं और कभी अप्राकृत सविशेष दर्शनके आवरणको ही वस्तु मानकर ब्रह्मज्ञ हो पड़ते हैं। कभी वे उक्त ज्ञानके अभावमें बाह्य दर्शन द्वारा देवीधाममें सत्यका अनुभव करने जाकर विवर्तवादका आश्रय करते हैं और गुणमाया द्वारा रचित जड़ शरीरको ही "मैं" मानने लगते हैं। यही अहंकार क्रमशः हरि-विमुख वाह्य-दर्शनके स्थिर होने पर बुद्धि कहलाता है। पुनः वही नश्वर अनित्य स्थिरा बुद्धि चाञ्चल्यवशतः संकल्प-विकल्प करने पर 'मन' कहलाती है। मन देवीधाम —जड़ जगत्में गुणमायाका आश्रय कर इन्द्रियों और उनके विषयोंको ग्रहण कर स्थूल रूपमें जड़-भोगोंका मालिक हो पड़ता है। इसी जगह उनकी हरि विमुखता की पराकाष्ठा लक्षित होती है। परम सत्य-वस्तु श्रीकृष्णसे विमुख होकर जीव कहाँ-से-कहाँ आ पड़े। यह सब कुछ उनकी स्वतन्त्रताका ही परिणाम है।

जीव इस देवीधाममें इन्द्रियोंको परम सत्य वस्तु की सेवामें नियुक्त न कर नश्वर वस्तु—तात्कालिक सत्यकी सेवामें नियुक्त कर दिये। श्रीभगवानने भी उन्हें विमुख सेवामें नियुक्त कर दिया। ऐसी दशा में घोर हरि-विमुखताके कारण कोई-कोई जीव भगवान्को भी अपने भोगकी ही वस्तु समझ लिया। 'विप्रलंभ संभोगकी पुष्टि करता है'—इस परम सत्य को भूल कर प्राकृत संभोगको ही श्रीगौरांग अथवा श्रीकृष्ण मान बैठे। ऐसे-ऐसे काल्पनिक भगवत परायण जीव अपनेको आउल, बाउल, कर्त्ताभजा, नेड़ा, दरवेश, साँई, सहजिया, सखीभेकी स्मार्त्त, जाति गोसांई, अतिबाड़ी, गोपीछाड़ि, गौरांगनागरी, आदि अभिमान कर श्रीगौराङ्ग और उनके निजजनों को अपने ही जैसा जीव समझने लगते हैं। इसीलिये 'सत्यका गला घोंटा जायगा'—ऐसा लक्ष्यकर श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती प्रभुने कहा है—"कालः कलिर्बलिन इन्द्रिय-वैरिवर्गाः, श्रीभक्तिमार्ग इह कण्टक कोटिरुद्धः।" गौरभक्तिको कलंकित कर गौरभक्तके नामसे आउल बाउल आदिका अभिमान शुद्ध भक्तों को कितना दुःख पहुँचाता है, इसे जाननेके लिये उन दलोंके अनेकों गौरभजाजनोंमें कौतुहल देखा गया। किन्तु जिनको ऐसा कौतुहल हुआ, वे "तद्विधि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया"—भूल कर वैष्णव हिंसा के द्वारा ही सत्यवस्तुको जान लेंगे—ऐसा घृणीत संकल्प के कारण असत्यमें प्रतिष्ठित हो गए।

वैष्णव या गौरभक्त सत्यसार होते हैं, अतएव उन्होंने ऊपर लिखे गए भक्ति विरोधी चेष्टाओंको गौरभक्तिका अंग मान कर ग्रहण नहीं किया। यह दुःसंगवर्जन ही उनके सत्यसारत्वका यथार्थ उदाहरण है। 'वास्तवमें श्रीगौरांगदेवके पदाश्रितजनोंके एकमात्र आराध्य—श्रीगान्धर्विका गिरधरके युगलचरण ही हैं।' यही गौर भक्तोंका सत्यसारत्व है। यही शुद्ध गौर भक्तोंका सत्यसारत्व है। यही अविमिश्र नित्यशुद्ध गौरभक्तोंका सत्यसारत्व है। इससे च्युत होकर असत्य और असार कथाओंसे गौरभजन नहीं होता। श्रीगौर भगवान् माया नहीं हैं या मायाकी क्रीड़ा-पुतली नहीं हैं अथवा हरि-विमुख जीवोंके कल्पना प्रसूत कोई पेय पदार्थ नहीं हैं। वे ही श्रीगान्धर्विका गिरिधर हैं। वे निश्चय ही कोई दूसरी वस्तु नहीं हैं। श्रीकृष्णके स्वांश और विभिन्नांशसे समस्त वस्तुओंकी उत्पत्ति हुई है और श्रीमती राधिकाजीसे समस्त शक्तियोंका प्रादुर्भाव हुआ है। नित्य जगत्में कहिए

अथवा कल्पना-जगत्में कहिए, समस्त अधिष्ठानोंके मूलाश्रय श्रीगान्धर्विका गिरिधरजी ही हैं। अतएव गौर-पदाश्रितजनोंके एकमात्र आराध्य श्री-गान्धर्विका-गिरिधरजी ही हैं, अन्यथा 'थेप्यन्य'—गीतालोकके अनुसार सेवा अवैध हो जायगी।

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

दशमूल-निर्यास

आम्नायः प्राह तत्त्वं हरिमिह परमं सर्वशक्तिं रसाब्धिं
तद्भिन्नांशांश्च जीवान् प्रकृति-कवलितांस्तद्विमुक्तांश्च भावात्
भेदाभेदप्रकाशं सकलमपि हरेः साधनं शुद्धभक्तिं।
साध्यं यत्प्रीतिमेवेत्युपदिशति हरौ गौरचन्द्रं भजे तम् ॥

उन श्रीगौरचन्द्रका मैं भजन करता हूँ, जिन्होंने ऐसी शिक्षा दी है। शिक्षा इस प्रकार है कि आम्नाय अर्थात् वेद ही एकमात्र प्रमाण है। वेद हमें नौ प्रकारके प्रमेयों अर्थात विषयोंकी शिक्षा देते हैं।

पहला विषय—श्रीहरि ही एकमात्र परम तत्त्व हैं। नव-जलधर-कान्ति सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीकृष्ण ही 'हरि' शब्दके वाच्य हैं। उपनिषद जिनको ब्रह्म बतलाते हैं, वे श्रीहरिके चिद्विग्रहकी प्रभामात्र हैं। श्रीकृष्णसे वे पृथक कोई स्वतंत्र तत्त्व नहीं हैं। योगीजन जिन्हें परमात्मा कहते हैं, वे श्रीहरिके वह अंश हैं, जिनके ईक्षणसे अर्थात् दृष्टिपात करने से ही प्रकृतिने इस चराचर विश्वकी सृष्टि की है। अतएव श्रीहरि ही एकमात्र प्रभु हैं और ब्रह्मादि सभी उनके दास हैं।

दूसरा विषय—वे श्रीहरि सर्वशक्तिसम्पन्न हैं। हरिसे अभिन्न हरिकी एक अचिन्त्य पराशक्ति हैं। वे अन्तरंगा रूपमें चिच्छक्ति, बहिरंगा रूप में मायाशक्ति और तटस्था रूपमें जीवशक्ति हैं। चिच्छक्ति द्वारा वैकुंठ आदि तत्त्व, मायाशक्ति द्वारा अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड एवं जीवशक्ति द्वारा अनन्त कोटि जीवकी सृष्टि की है। उस पराशक्तिके सन्धिनी सम्वित् और ह्लादिनी—ये तीन प्रभाव हैं।

तीसरा विषय—वे श्रीकृष्ण हरि ही अखिल-रस समुद्र हैं। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर ये पाँच प्रकारके रस हैं। इनमें मधुर रस ही सर्वश्रेष्ठ है। श्रीकृष्णकी ब्रजलीलामें मधुर रस विशुद्ध रूपमें अवस्थित है। श्रीकृष्णमें चौसठ गुण सुशोभित हैं, जैसे—(१) अत्यन्त मनोहर अंग (२) सर्वसुलक्षणों से युक्त (३) सुन्दर, (४) महातेजस्वी (५) बलवान, (६) किशोर वयस, (७) विविध प्रकार के अद्भुत भाषाविद्, (८) सत्य वाणी बोलने वाले, (९) मृदुभाषी, (१०) वाक्पटु (११) बुद्धिमान (१२) सुपण्डित, (१३) प्रतिभाशाली, (१४) रसिक, (१५) चतुर, (१६) निपुण, (१७) कृतज्ञ, (१८) सुदृढ़-व्रत, (१९) देशकाल पात्रके सम्बन्धमें सुविज्ञ, (२०) शास्त्र दृष्टियुक्त, (२१) पवित्र, (२२) जितेन्द्रिय (२३) स्थिर, (२४) संयमी, (२५) क्षमाशील, (२६) गंभीर, (२७) धीर, (२८) सम, (२९) वदान्य अर्थात् उदार, (३०) धार्मिक, (३१) शूर, (३२) करुण, (३३) मानद, (३४) दक्षिण अर्थात् अनुकूल, (३५) विनयी (३६) लज्जायुक्त, (३७) शरणागत पालक (३८) सुखी, (३९) भक्त-सुहृद, (४०) प्रेमके अधीन (४१) मङ्गल-मय, (४२) प्रतापी, (४३) कीर्तिशाली, (४४) सबका प्रिय (४५) सज्जनोंका पक्ष ग्रहणकारी, (४६) नारी मनोहारी, (४७) सबके आराध्य, (४८) ऐश्वर्यशाली, (४९) श्रेष्ठ और (५०) ऐश्वर्ययुक्त। ये ५० गुण भगवान् श्रीकृष्णमें समुद्रकी तरह अगाध और असीम रूपमें और जीवोंमें बिन्दु-बिन्दु रूपमें वर्तमान हैं। इन ५० गुणोंके अतिरिक्त दूसरे ५ गुण

जो श्रीकृष्णमें पूर्ण रूपसे हैं और शिवादि देवताओं में आंशिक रूपमें विराजमान हैं, वे ये हैं—(१) सदा स्वरूपमें स्थिति (२) सर्वज्ञ, (३) नित्य-नवीन, (४) सच्चिदानन्द घनीभूत-स्वरूप, (५) सर्व सिद्धियों से सेवित । परव्योमनाथ नारायण आदिमें और भी पाँच गुण अधिक रूपमें विराजित हैं। वे पाँच गुण कृष्णमें भी पूर्णरूपसे रहते हैं, किन्तु शिव आदि देवताओंमें अथवा जीवोंमें वे गुण नहीं होते। वे पाँच गुण ये हैं—(१) अविचिन्त्य महा-शक्तित्व; (२) कोटि ब्रह्माण्ड-विग्रहत्व, (३) सर्व अवतार बीजत्व, (४) हतशत्रु-सुगतिदायकत्व, (५) आत्माराम मुनियोंके आकर्षकत्व । ये पाँच गुण नारायण आदिमें वर्त्तमान रहने पर भी श्रीकृष्णमें अद्भुत-रूपसे विराजमान हैं। इन साठ गुण गुणोंके अतिरिक्त श्रीकृष्णमें और भी चार गुण प्रकाशित हैं, जो नारायणमें भी प्रकाशित नहीं हैं। (१) सर्वलोक चमत्कारिणी-लीलाकल्लोल-समुद्र, (२) शृङ्गार रसके अतुलनीय प्रेम द्वारा सुशोभित तथा अपने प्रिय पात्रोंके मङ्गल-स्वरूप, (३) तीनों लोकोंको आकर्शित करनेवाली मुरलीकी तान, (४) चराचर विश्वको चकित और मुग्ध कर देनेवाली अतुलनीय रूप-श्री । इन चौंसठ गुणोंसे युक्त श्रीकृष्ण निखिल रसामृत-समुद्र स्वरूप हैं ।

चौथा विषय—पहलेके तीन विषयोंमें भगवत् तत्त्वका उल्लेख है। चौथे, पाँचवें और छठें विषयोंमें जीव तत्त्वका वर्णन है । चौथेमें जीवके स्वरूपका विवेचन है । जीव श्रीहरिकी पराशक्तिके तटस्थ विक्रमसे—महादीपसे अनन्त क्षुद्र दीपोंकी उत्पत्तिकी तरह—विभिन्नांश रूपसे प्रकटित हुआ है। जीव चित् स्वरूप और चिद्धर्मयुक्त होने पर भी अत्यन्त क्षुद्र और पराधीन है । पराधीन-स्वभाव होनेके कारण कृष्णसे विमुख होने पर मायाके अधीन हो पड़ता है। ईश्वर और जीवमें भेद यह है कि—'दोनों चित्-स्वरूप तो हैं, परन्तु ईश्वर स्वभावतः विभुचित् वस्तु हैं; वे मायाके प्रभु हैं और माया उनकी नित्य-दासी है। परन्तु जीव मुक्त अवस्थामें भी स्वभावतः मायाके अधीन होने योग्य हैं तथा अणु चित् होते हैं; जीव कृष्णके अधीन रहने पर मायासे मुक्त होते हैं । शुद्ध जीव चिद्विग्रहयुक्त होते हैं, इनमें पूर्वोक्त पचास गुण बिन्दु-बिन्दु रूपमें वर्तमान होते हैं। वे समस्त गुण चिन्मय होते हैं । शुद्ध जीवमें मायिक धर्म या मायिक गुण नहीं होते ।

पाँचवाँ विषय—जीव कृष्णरूप चित्-सूर्यके किरणकण हैं । अत्यन्त क्षुद्र होनेके कारण वे परतंत्र होते हैं। कृष्णके परतन्त्र होनेसे उन्हें दुःख नहीं होता; उस समय वे परमानन्द भोग करते हैं। परन्तु भोगकी कामना करनेसे कृष्ण विमुख हो, वे मायाबद्ध हो पड़ते हैं तथा मायाके दुर्निवार कर्मचक्रमें पड़कर जड़-जगत्में मायिक सुख-दुःख भोग करते हैं। मायाका कर्मचक्र पुण्य-पाप, सुख-दुःख और उच्च-नीच अवस्थाजनक होता है। उससे कभी स्वर्ग आदि लोक और कभी नरक आदि भोग करते हुए चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करना पड़ता है ।

छठा विषय—मायाके चक्रमें बद्ध होने पर भी जीव स्वरूपतः चित्-स्वरूप है, अतएव मायासे मुक्त होने के योग्य है। किन्तु किसी मायिक उपायके द्वारा जीव मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता, इसलिये पुण्यजनक किसी शुभ कर्मके द्वारा मायाको दूर करना सम्भव नहीं होता। मैं जीव—चित्कण हूँ और माया मेरे लिये हेय है, ऐसा ज्ञान होने पर भी ज्ञान-वैराग्य द्वारा मायासे मुक्ति नहीं होती। अपने गुप्त और लुप्तप्राय कृष्णदास्यभावके उदय होनेके साथ-साथ मुक्ति रूप अवान्तर फल उपस्थित होता है । अपना स्वभाव उदय होने पर ही माया-पराधीन-स्वभाव दूर होता है। अपना निजस्व स्वभाव अत्यन्त लुप्त-प्राय है, उसे कौन जाग्रत करता है ? कर्म, ज्ञान और वैराग्यकी चेष्टा ऐसा करनेमें असमर्थ है। अतएव जिनका किसी सौभाग्यसे स्व-स्वभाव जाग्रत हुआ है, उनके सङ्ग-प्रभावसे जीवका गुप्त-प्राय स्व-स्वभाव जाग्रत हो सकता है । इस विषयमें दो घटनाओंका प्रयोजन होता है । जो स्व-स्वभाव जाग्रत करना चाहते हैं, वे

पूर्व भक्ति उन्मुखी सुकृतिके प्रभावसे किंचित् परिमाणमें शरणापत्ति-लक्षणा श्रद्धा* लाभ करते हैं, यही पहली घटना है। उसी सुकृतिके बलसे उनको किसी उपयुक्त साधुका संग प्राप्त होता है—यही द्वितीय घटना है। सच्चे साधु वे हैं, जो सौभाग्यवश दूसरे साधुके संग से अपने स्वभावको जाग्रत कर सके हैं। सत्संगके प्रभावसे हरिनाम आदिका अनुशीलन करते-करते भावोदय और पीछे क्रमशः प्रेमोदय होता है। प्रेम जिस परिमाणमें उदित होता है, मुक्ति भी उसी परिमाणमें आनुषंगिक फलके रूपमें स्वयं आ उपस्थित होती है।

सातवाँ विषय—पहलेसे लेकर छठें विषय तक की सत्संगमें आलोचना होनेसे सम्बन्ध-ज्ञान उदित होता। सम्बन्ध-ज्ञानका भेद साँतवा विषय है। जिज्ञासु जीव ऐसा प्रश्न करते हैं—(१) मैं कौन हूँ? (२) मैं किसका हूँ? इस विश्वके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है? इन तीनों विषयोंकी भलीभाँति आलोचना कर देख पाते हैं कि जीवरूप मैं—अणुचैतन्य और कृष्णका नित्य दास हूँ तथा अखिल जगत् उस श्रीकृष्णका भेदाभेद प्रकाश है। कृष्ण ही एक मात्र सम्बन्ध हैं। विवर्तवाद आदि तर्क निरर्थक और अवैदिक हैं। कृष्णकी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा जीव-समूह और अखिल ब्रह्माण्ड उनसे (कृष्णसे) नित्य पृथक् और अपृथक् है। इस ब्रह्माण्डमें मेरी नित्य स्थिति नहीं है; यह बन्दीगृह मात्र है। इस ज्ञानसे अनन्य कृष्णभक्तिमें श्रद्धा अर्थात् दृढ़ विश्वास होता है।

आठवाँ विषय—सम्बन्ध ज्ञान हो गया है, सत्संगके प्रभावसे अनन्यभक्तिके प्रति श्रद्धा भी हो गयी है; अब क्या करनेसे कृष्ण प्रसन्न होंगे—ऐसा सोचकर सद्गुरु के पास सदुपाय जिज्ञासा करते हैं। श्रद्धालु व्यक्ति को भक्तिका अधिकारी जानकर सद्गुरु उसे शुद्ध कृष्ण भक्तिकी शिक्षा देते हैं। शुद्ध कृष्ण भक्तिका लक्षण यह है—

> अन्याभिलाषिता-शून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतम्।
> आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥
> (भ० र० सि० १।१।६)

अनुकूल भावके साथ सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण और लीलारसका अनुशीलन ही उत्तमा अर्थात् शुद्धा भक्ति है। जीवनकी समस्त क्रिया, सम्बन्ध और भावोंको भजनके अनुकूल कर भक्त्यङ्गका अनुशीलन करना ही कर्त्तव्य है। इसलिये भजनके प्रतिकूल क्रिया, सम्बन्ध और भावोंका वर्जन कर जीवन यात्राका निर्वाह करते हुए भजन करना ही आनुकूल्य भाव है। इसके लिये भजन क्रियामें कुछ निर्वन्धिनी मतिकी आवश्यकता है। जीवका स्व-स्वरूप उदय करवानेके लिये भजन करना आवश्यक है। भजन निर्मल हो—इस उद्देश्यसे उसमें भजनोन्नतिके अतिरिक्त और कोई भी दूसरी अभिलाषा या आकांक्षा नहीं रखनी चाहिए। इसलिए भोगवांछा और मोक्षवांछा तकका परित्याग करना आवश्यक है। जीवन-यात्रा निर्वाहके लिये ज्ञान चेष्टा और कर्मचेष्टा अवश्य होगी; परन्तु कर्म और ज्ञानके उन समस्त अंगका—जो शुद्धभक्ति-वृत्तिको आवृत करते हैं—परित्याग करना चाहिए। निर्भेद ब्रह्म-ज्ञान और भक्ति-लक्षणरहित कर्मोंसे सर्वथा दूर रहना चाहिए।

---

*"आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा। आत्म निक्षेप-कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥" तात्पर्य यह है कि जीव जब यह निश्चयतापूर्वक जान लेता है कि मायिक संसार मेरे लिये बन्दीगृह है,—अतएव हेय है और कर्मकाण्ड, निर्भेद-ज्ञानकाण्ड और ऐश्वर्य या कैवल्यजनक योग आदि प्रक्रियाएँ मेरे स्व-स्वभावको निश्चय ही प्रकाशित करनेमें समर्थ नहीं हैं, तब कृष्ण-भक्तिके प्रतिकूल समस्त विषयोंका वर्जन कर कृष्ण ही मेरे एक मात्र रक्षक और प्रतिपालक हैं—ऐसा विश्वास करते हुए कृष्णकी इच्छाके अधीन तथा अकिंचन भावसे कृष्णके चरण-कमलोंमें शरणागत होते हैं, विशुद्धा श्रद्धाका यही लक्षण है।

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, बन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदनके भेदसे भक्तिके नौ अङ्ग होते हैं। पुनः इन सब अङ्गोंके मुख्य २ उप-अङ्गों (प्रत्यगों) के भेदसे भक्तिके चौसठ अङ्ग कहे गये हैं। उनमें से कुछ विधि-लक्षण हैं और कुछ निषेध-लक्षण। विधि-लक्षणोंमें हरिनाम, हरि-धाममें वास, हरिरूप-सेवन, हरिजन-सेवा और हरिभक्तिके शास्त्रोंकीचर्चा—ये पाँच भक्ति-अङ्ग मुख्य हैं। अपराध* वर्जन, यत्नपूर्वक अवैष्णवसंग त्याग, अपनेमें गरु-बुद्धिको बढ़ानेके लिये बहुत शिष्य न करना, नाना-ग्रन्थोंका कलाभ्यास और व्याख्यान वर्जन, पार्थिव हानि-लाभमें हर्ष-शोकका त्याग, शोक-मोहादिके वशमें न होना, अन्यान्य देवताओं और शास्त्रोंकी निन्दा न करना, विष्णु और वैष्णवोंकी निन्दा न सुनना, प्रतिकूल रूपमें ग्राम्यवार्ताका अनु-शीलन न करना, प्राणिमात्रको उद्वेग न देना—इन दस प्रकारके निषेधोंका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। कृष्णनाम-रूप-गुण-लीलाका कीर्त्तन भक्तिके अन्यान्य अङ्गोंसे श्रेष्ठ है। ऐसी साधन-भक्ति शास्त्र-आज्ञानुसार साधित होने पर वैधी भक्ति कहलाती है। दृढ़ श्रद्धाके साथ साधते-साधते भावभक्तिका उदय होता है। साधन भक्ति और भी एक प्रकारकी होती है, वह असाधारण होती है, जिसे रागानुगा भक्ति कहते हैं। व्रजवासियोंकी श्रीकृष्णके प्रति रागमयी भक्ति स्वतःसिद्धा होती है। उसे देख कर किसी सुकृति सम्पन्न व्यक्तिको उस रागमयी भक्तिके प्रति लोभ पैदा होता है और उसी लोभसे वह उसमें प्रवृत्त होता है। ऐसे व्यक्तियोंकी साधन भक्ति-को रागानुरागा भक्ति कहा जा सकता है। इसमें शास्त्रयुक्तिकी अपेक्षा नहीं रहती है। एक मात्र सेवा-प्राप्ति ही उसका कारण होता है। यह दोनों प्रकारकी साधन भक्ति ही अभिधेय तत्त्व है।

नवाँ विषय—प्रयोजन स्वरूप कृष्ण-प्रेम ही नवाँ विषय है। श्रद्धापूर्वक अनन्य भक्तिका अनु-शीलन करते-करते अथवा व्रजवासियोंके भावोंका अनुसरण करते हुए साधन करते-करते कृष्णके विषय-में भावोदय होता है। ऐसी दशामें वैध-साधनकी सारी चेष्टाएँ भावके साथ मिल कर भावमयी हो पड़ती हैं। वही भाव अधिकारीके भेदसे शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रसाश्रित प्रेमदशा प्राप्त होता है। शान्त-रस व्रजसे बहुत ही दूर रहता है। व्रजमें 'दास्य'–प्रेमसे रसकी प्रक्रिया होती है। उल्ला-समय भावविशेषका नाम—रति है। उसमें कृष्णके प्रति अनन्य-ममता युक्त होनेसे वह प्रेम हो पड़ता है। इसी रसका नाम 'दास्य'-रस है। दास्य रसमें संभ्रम अधिक मात्रामें होता है। इस ममतामें संभ्रम-शून्य विश्रंभ अर्थात् विश्वास उदय होने पर उसे 'प्रणय' कहा जाता है। इसका नाम 'सख्य'-रस है। यदि इस रसमें अतिरिक्त स्नेह संयुक्त हो तो उसे 'वात्सल्य' रस कहते हैं। वात्सल्य रसके समस्त गुण अभिलापमय होने पर वही 'शृङ्गार'-रसका रूप

---

* अपराध दो प्रकारका होता है—सेवापराध और नामापराध। अमूर्त्तिकी सेवाके प्रसङ्गमें सेवापराध-समूह विचारणीय है। नामापराध साधारण भक्त मात्रके लिये परित्याज्य है। (१) नाम-परायण सन्तोंकी निन्दा, (२) भगवान्के नाम-रूप-गुण-लीला—इन सबको भगवान्से पृथक समझना और भगवान्से शिव आदि अन्यान्य देवताओंको पृथक् ईश्वर समझना, (३) नाम-शिक्षागुरुकी अवज्ञा, (४) नाम-महिमा-वाचक शास्त्रोंकी अवज्ञा, (५) श्रीनामकी महिमाको केवल स्तवमात्र समझना, (६) नामको कल्पित मानना, (७) नामके बल पर पाप करना, (८) चिन्तामणि चैतन्य रसरूप नामको जड़ीय पुण्य या शुभ कर्मोंके समान समझना, (९) अनाधिकारी श्रद्धाहीन व्यक्तिको नामका उपदेश करना और (१०) अहंता-ममतारूप अभिमानके साथ नामका अनुशीलन करना—ये दस प्रकारके नामापराध हैं। नामापराध बड़ा ही कठिन होता है; वह किसी प्रकार दूर नहीं होता, केवल निरन्तर नाम करनेसे दूर होता है। नाम ग्रहणके साथ ही शिष्यको नामापराधसे दूर रहनेका प्रयत्न करना चाहिए।

धारण करता है। शृङ्गार रस सर्वोत्तम रस है। व्रजमें वास कर राधा-कृष्णकी किसी सखीके अनुगत पाल्यभावसे सेवा करना ही रसका आस्वादन करना है। कृष्ण सच्चित्-स्वरूप हैं और उनसे अभिन्न तत्त्व आनन्द ही—श्रीमती राधिका हैं। पूर्णानन्दमयी श्रीमती राधिकाजीकी सखियाँ उनके (श्रीमतीजीके) भाव विशेष हैं; अतः वे काय-व्यूह हैं। वे सखियाँ पराशक्तिका काय-व्यूह होनेसे स्वरूप-शक्तिगत तत्त्व हैं। प्रेम-रूप प्रयोजन प्राप्त कर जीव निर्मल होते ही उन सखियोंकी परिचारिकायोंकी श्रेणीमें आ जाता है। श्रीराधाकृष्ण-सेवानन्द-सुख नित्य संभोग (अनुभव) करता है। यही जीवके लिये चरम प्रयोजन है। चित्तत्त्वका यही परम विचित्र-भाव है। निर्भेद-ब्रह्ममें लयरूप मुक्तिमें ऐसा विचित्र आनन्द नहीं होता। श्रीरूप गोस्वामी-प्रदत्त भक्तिका क्रम इस प्रकार है—

आदौ श्रद्धा ततः साधु-संगोऽथ भजन-क्रिया।
ततोऽनर्थ-निवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥
(भ० र० सि० १।४।१०)

स्याद्दृढेऽयं रतिः प्रेम्णा प्रोद्यन् स्नेहः क्रमादयम्।
स्यान्मानः प्रणयो रागोऽनुरागो भाव इत्यपि॥
बीजमिक्षुः स च रसः स गुडः खण्ड एव च।
सा शर्करा सिता सा च सा यथा स्यात् सितोपला॥
(उज्ज्वलनीलमणि स्थायिभाव प्र० ४५)

पहले श्रद्धा, फिर उससे साधुसङ्ग, साधुसङ्गसे भजन-क्रिया, भजन-क्रियासे समस्त अनर्थ-निवृत्ति, अनर्थ निवृत्तिसे रुचि, आसक्ति और क्रमशः भावका उदय होता है; भावसे प्रेम होता है। भावका दूसरा नाम—रति है। रति गाढ़ी होने पर प्रेम कहलाती है। प्रेम गाढ़ा होकर क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग अनुराग और महाभाव तक उन्नत होता है। जैसे गन्ना, रस, गुड़, खाँड़, शक्कर, सिता और सितोपल क्रमशः एक से एक बढ़ कर स्वादिष्ट होता है, ठीक उसी प्रकार प्रेमकी प्रक्रियामें भी क्रमशः एक दूसरेसे श्रेष्ठ हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने श्रीरूप और सनातनको जो शिक्षाएँ दी थीं, उसीको दशमूल कहते हैं। यह छोटी सी पुस्तक उसी दशमूलका निर्यास अर्थात् सार तत्त्व है। जो श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा ग्रहण कर शुद्ध वैष्णव होना चाहते हैं, वे सबसे पहले इस दशमूल निर्यासका सेवन करेंगे। श्रीगुरुदेव उन्हें इसी निर्यासमें सारे तत्त्वोंको दिखलायेंगे। श्रद्धासे गुरु-पादाश्रय, श्रीगुरुचरणसे भजन-शिक्षा; भजनके द्वारा समस्त प्रकारके अनर्थोंकी निवृत्ति; पश्चात् निष्ठा आदि से भावका उदय होता है। भजनका पहला अङ्ग—दशमूलका सेवन करना है। गुरुदेव शिष्यको दशमूल-निर्यास पिला कर उसका पंच-संस्कार* करेंगे। दशमूल पान करनेके पश्चात् भजन नहीं करने से

*तापः पुंड्रं तथा नाम मंत्रो यागश्च पञ्चमः। अमी हि पंच-संस्काराः परमैकान्तिहेतवः॥" इसका संक्षेपमें तात्पर्य यह है कि, जब शिष्यको थोड़ी सी श्रद्धा हो जाय तब वे सद्गुरुके पास आते हैं। श्रीगुरुके समीप आनेके पहले ही शिष्य थोड़ा-बहुत ताप अर्थात् अनुताप भोग लिये होते हैं। "भीषण संसार-समुद्रमें पतित होकर मैं बहुत ही कष्ट पा रहा हूँ, हे दीन-तारण! तुम कृपा कर मुझे अपने चरणकमलोंकी धूलके समान कर ग्रहण करो, मेरा और कोई नहीं है"—इस प्रकार अनुताप करते शिष्य गुरुदेवके चरणकमलोंमें पड़ जाता है। ऐसे अनुतप्त जीवके अतिरिक्त दूसरा कोई भी दीक्षा लाभ करनेका अधिकारी नहीं है, इसे स्थिर रखनेके लिये गुरुदेव शिष्यको तप्त चक्र आदिसे परीक्षा करते हैं। परम कारुणिक कलि-पावन जगदाचार्य-विग्रह श्रीचैतन्य देवने चन्दन आदिसे शिष्यके शरीरको अङ्कित करनेके लिये आज्ञा दी है। अनुतप्त अधिकारी जीवको पहले परिष्कृत कर हरिमन्दिरादि तिलक प्रदान करेंगे। अनुतापके समयमें ही दशमूल-ज्ञानके द्वारा अनुतापको स्थायी करना आवश्यक है। स्थायी अनुताप देख कर द्वादश तिलक आदि देना उचित है। इसी समय शिष्यका दूसरा जन्म होता है। अतएव उसे एक भक्तिसूचक नाम देना

अनर्थ-निवृत्ति नहीं होगी। अनर्थ चार प्रकारके होते हैं—(१) स्वरूप-भ्रम, (२) असत् तृष्णा, (३) अपराध और (४) हृदय दौर्बल्य। जीव अपने स्वरूपको भूल कर दूसरे रूपका अभिमान कर मायिक हो पड़ा है, अतएव स्वरूप-भ्रम पहले ही दूर होना आवश्यक है। स्वरूप-भ्रम एक दिनमें दूर नहीं होता, बल्कि कृष्णा-नुशीलनके साथ-साथ धीरे-धीरे दूर होता है। "मैं कृष्ण-दास हूँ"—यह अभिमान ही जीवका स्वरूप-ज्ञान है। इसी अभिमानके साथ कृष्णका अनुशीलन करना ही यथार्थ कृष्णानुशीलन है। श्रीगुरुदेवकी कृपासे स्वरूप-ज्ञानका उदय होता है। शिष्य विशेष प्रयत्न करके आत्म-स्वरूप ज्ञात होंगे, अन्यथा पहला अनर्थ दूर नहीं हो सकता। पहला अनर्थ जितने परिमाणमें दूर होता रहेगा, असत् तृष्णारूप द्वितीय अनर्थ भी साथ ही साथ उतने ही परिमाणमें दूर होता जायेगा। जड़-शरीरकी विषय-भोगकी पिपासा ही असत्तृष्णा है। स्वर्ग-सुख, इन्द्रिय-सुख, धन-जनका सुख,—सभी असत्तृष्णा है। अपना स्वरूप जितना ही स्पष्ट होगा, इतर वस्तुओंके प्रति उतने ही परिमाणमें वैराग्य अवश्य ही होगा। साथ ही नामापराध दूर करनेके लिये विशेष यत्न करना आवश्यक है। 'नामापराध' छोड़कर नाम करनेसे प्रेमधन बहुत ही शीघ्र प्राप्त होता है। आलस्य, इतर विषयोंके वशमें होना, शोक आदिके द्वारा चित्त-विभ्रम, कुतर्क द्वारा शुद्ध भक्तिसे दूर होना, अपनी सम्पूर्ण जीवनीशक्ति-को कृष्ण-अनुशीलनमें अर्पण करनेमें कार्पण्य, जाति-धन-विद्या-रूप-बलके अभिमानसे दैन्य-स्वभाव ग्रहण न करना, अधर्म-प्रवृत्ति या उपदेश द्वारा परिचालित होना, कुसंस्कार शोधन करनेमें प्रयत्न न करना, क्रोध-मोह-मात्सर्य-असहिष्णुताजनित दया परित्याग, प्रतिष्ठाशा और शठता द्वारा व्यर्थ ही अपनेमें वैष्णव-का अभिमान करना, कनक-कामिनी और इन्द्रिय सुखकी अभिलाषासे अन्य जीवोंके प्रति अत्याचार—यह सब कुछ हृदय-दौर्बल्यसे पैदा होता है। जो लोग दशमूलको सिद्धान्त* (कठिन विषय) समझ कर अवहेला करेंगे, उनकी कृष्णभक्ति कभी भी सिद्ध

उचित है। नामके साथ-साथ स्वरूप-सिद्धि कराना आवश्यक है। स्वरूप-सिद्धिके साथ-साथ श्रीकृष्णका सम्बन्ध-वाचक मंत्र देना होगा। पुनः मंत्रका सारांश—भगवन्नाम देकर शिष्यको सम्बन्ध-सिद्ध करेंगे। संसार-सम्बन्धग्रस्त जीवको कृष्ण-सम्बन्धमें परिपक्व करनेके लिये शालग्राम, श्रीमूर्त्ति आदिकी सेवारूप याग ही पंचम संस्कार है। पंचम संस्कार दो प्रकारका होता है—प्राथमिक और चरम। प्रेम-प्राप्त व्यक्तिके लिये मानस-सेवा ही परिचर्या है। श्रीरघुनाथदास गोस्वामीको श्रीमन्महाप्रभुने यह चरम उपदेश दिया था—

"ग्राम्यकथा ना सुनिबे, ग्राम्यवार्त्ता न कहिबे। भाल ना खाइबे आर भाल ना परिबे॥
अमानी मानद हञा कृष्णनाम सदा लबे। व्रजे राधाकृष्ण-सेवा मानसे करिबे॥"

(चै० च० अ० ६।२३६-३७)

भावप्राप्त भक्तके सम्बन्धमें ऊपरवाली दो पंक्तियोंमें शरीर-व्यवहारका उपदेश है। नीचली दो पंक्तियोंमें भजन और परिचर्याका उपदेश दिया गया है; अमानी और मानद होकर कृष्णनाम ग्रहण करना ही भजनका बाह्य प्रकाश है। व्रजमें अवस्थित होकर राधाकृष्णकी सेवा ही परम गुह्य है। यह सेवा अष्टकालीन है। श्रीगुरुदेव उन-उन शास्त्रोंके अनुसार उपदेश प्रदान करेंगे।

*इस विषयमें श्रीचैतन्यचरितामृतके कुछ पद आलोच्य हैं तथा उनका 'अमृतप्रवाह' भाष्य द्रष्टव्य है—

सब श्रोतागण करि चरण वन्दन। ए सब सिद्धान्त सुन, करि एक मन॥
सिद्धान्त बलिया चित्ते ना कर अलस। इहा हैते कृष्णे लागे सुदृढ़ मानस॥

(चै० च० आ० २।११६-११७)

नहीं होगी। श्रीगुरुदेवके समीप उपस्थित होने पर योग्य शिष्यको श्रीश्रीचैतन्य-सम्प्रदायमें पंच-संस्कार देनेके पहले ही यह ग्रन्थ पढ़ाना आवश्यक है। ऐसा होनेसे अनुपयुक्त व्यक्ति श्रीश्रीमहाप्रभुके पवित्र और निर्मल सम्प्रदायको दूषित और कलंकित न कर सकेंगे।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

अचिन्त्यभेदाभेद

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ४, संख्या ३, पृष्ठ ६१ से आगे]

सुन्दरानन्द विद्याविनोदका प्रश्न और उसका उत्तर

सुन्दरानन्द विद्याविनोद महाशयने अपने 'वाद' ग्रन्थके पृष्ठ २४३ के (ङ) प्रसंगमें श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुपादसे एक प्रश्न किया है। उनके मस्तिष्कमें ऐसे प्रश्न उठनेके कारणके सम्बन्धमें हम देख पाते हैं कि—श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुपादने तत्त्व-सन्दर्भमें पूर्वोल्लिखित २८ वें अनुच्छेदमें श्रीमध्वके 'मतविशेष' का विवरण देते समय कहा है—"भक्तानां विप्रानामेव मोक्षः, देवा भक्तेषु मुख्याः, विरिञ्चस्यैव सायुज्यं, लक्ष्म्या जीवकोटित्व-मित्येवं मत विशेषः।" (तत्त्व सन्दर्भः, २८ अनुच्छेद बलदेवटीका)। मैं नीचे उनके सम्पूर्ण प्रश्नका उद्धार कर रहा हूँ—

"श्रीबलदेव विद्याभूषणने तत्त्ववाद गुरु मध्वाचार्यके 'मतविशेष' की जो व्याख्या की है उससे यह जाना जाता है कि भक्तोंमें केवल ब्राह्मणों को ही मोक्षकी प्राप्ति होती है, भक्तोंमें देवगण ही प्रधान हैं, केवल ब्रह्माका ही विष्णुके साथ सायुज्य होता है और लक्ष्मी भी जीव कोटिके अन्तर्गत हैं—यही 'मत-विशेष' है। ऐसा मतवाद-विशेष विद्यमान होने पर भी श्रीचैतन्य देवने माध्व सम्प्रदायको क्यों ग्रहण किया? श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण प्रभुकी लेखनीमें इस प्रश्नका कोई कारण नहीं पाया जाता है?" (क)

विद्याविनोद महाशयके इस प्रश्नका उत्तर श्रीकविराज गोस्वामीकी भाषामें इस प्रकार दिया जा सकता है—

> उलूके ना देखे येन सूर्येर किरण।
> देखिया ना देखे यत अभक्तेर गण॥
>
> (चै. च. आ. ३।८४)

अतएव सुन्दरानन्द विद्याविनोद जैसे गुरु-द्रोही, वैष्णवविद्वेषी अभक्तकी आँखोंसे श्रीबलदेव प्रभुका उत्तर कैसे दीख सकता है? परन्तु उन्होंने स्वयं ही उक्त प्रश्नके बाद लिखा है—'श्रीमद्बलदेव विद्याभूषण प्रभु किसी सामयिक-प्रयोजनके लिये गौड़ीय-सम्प्रदायको सुप्रचारित सात्वत चार-सम्प्रदाय के किसी एक के अन्तर्गत दिखलानेके उद्देश्यसे ही गौड़ीय सम्प्रदायकी माध्व-सम्प्रदाय भुक्तिका इतिहास प्रकाश किया है। (ख)। विद्याविनोद महाशयके ऐसा कहनेका उद्देश्य यह है कि—गौड़ीय सम्प्रदायकी माध्व सम्प्रदायभुक्तिका इतिहास बलदेव प्रभुका स्व-रचित है। अर्थात् इसकी कोई प्रामाणिकता नहीं। किसी उद्देश्यके वशवर्ती होकर ही बलदेवकी यह कीर्ति है। यहाँ पर मेरा वक्तव्य यह है कि 'इतिहास' कहनेसे क्या स्वकपोल-कल्पित घटनाका लक्ष्य होता है? अथवा प्राचीन ऐतिह्यमूलक तथ्य या घटनावलीका बोध होता है? श्रीबलदेव प्रभुने तत्त्वसन्दर्भकी टीका, गोविन्दभाष्य, सिद्धान्तरत्न, प्रमेयरत्नावली,

---

(क) सुन्दरानन्दकृत "अचिन्त्यभेदाभेदवाद" पृष्ठ २४३-४४।

(ख) ,, ,, पृष्ठ २४४, पंक्ति ३-६

आदि अनेक ग्रन्थोंमें गौड़ीय-वैष्णवोंके पूर्व-पूर्व आचार्योंकी इतिहासमूलक घटनाओं और सिद्धान्तों को उद्धृत करके विश्वके समस्त दार्शनिकोंको यह जना दिया है कि गौड़ीय सम्प्रदाय माध्वसम्प्रदायके अन्तर्गत है और इस सम्बन्धमें पृथ्वीके प्राच्य और पाश्चात्य, प्राचीन और आधुनिक समस्त विद्वानोंसे एकवाक्यसे श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुके सिद्धान्तों और विचारोंको नत मस्तक होकर स्वीकार किया है। केवलमात्र साहाकुलोद्भूत सुबोध बाबू 'उर्फ' सुन्दरानन्द विद्याविनोद महाशय और उनके दलके कतिपय व्यक्तियोंने ही श्रीबलदेव विद्याभूषण और श्रीमन् मध्वाचार्यके चरणकमलोंके प्रति अपराध करके प्रतिवादमूलक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। सुन्दरानन्दके इस ग्रन्थके पहले बलदेव प्रभुके चरणोंमें अपराधमूलक कोई भी दूसरा ग्रन्थ कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है।

(क्रमशः)

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज

श्रीश्रीब्रजमण्डल-परिक्रमाका विराट् आयोजन

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,
कंसटीला, मथुरा (उ. प्र.)
७ सितम्बर १९५८.

प्रिय महानुभाव,

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने इस वर्ष श्रीकेशवजी गौड़ीयमठ, मथुरामें श्रीउर्जव्रत (कार्तिक-व्रत) के उपलक्षमें श्रीश्रीब्रजमण्डल परिक्रमाका विराट आयोजन किया है। बंगाल, बिहार और आसाम आदि पूर्वी-प्रदेशोंके यात्रियोंकी सुविधाके लिये आगामी ८ कार्तिक, २५ अक्टूबर, शनिवारको हावड़ा स्टेशनसे ८ बजे रातमें एक रिजर्व ट्रेन छूटेगी, जो यात्रियोंको रास्तेमें गया, काशी, प्रयाग आदि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थोंका दर्शन कराती हुई मथुरा पहुँचेगी। समितिके प्रतिष्ठाता एवं आचार्य—परमहंस मुकुटमणि परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी भी परिक्रमा-संघके साथ पधार रहे हैं। एक महीने तक प्रतिदिन श्रीमद्भागवतके प्रवचन, संकीर्त्तन, वेद-वेदान्त और पुराणोंके पारंगत बड़े-बड़े विद्वानों और संतोंके भाषण, श्रीविग्रह-सेवा-पूजा, धाम-परिक्रमा आदि शुद्ध भक्तिके विविध अंगोंके पालनकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था है।

श्रीश्री द्वारकाधामकी परिक्रमाकी भी व्यवस्था है।

हम धर्म-प्राण सज्जनोंसे इस अपूर्व सुयोगको ग्रहण करनेके लिये अनुरोध करते हैं।

विशेष जानकारीके लिये 'श्रीभागवत-पत्रिका कार्यालय, मथुरा' या 'श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ पो० चुचुड़ा (हुगली)' के साथ पत्र व्यवहार करें।

निवेदक—
श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभ्यवृन्द,

मुनियोंका मतिभ्रम

(डा० राधाकृष्णन् द्वारा सम्पादित अँग्रेजी-गीता-भाष्यकी समालोचना—पूर्व प्रकाशित
वर्ष ४, संख्या २, पृष्ठ ४० से आगे)

यदि डा० राधाकृष्णन् अव्ययत्व, नित्यत्व, अजत्व आदि अप्राकृत गुणोंको केवल निर्विशेष ब्रह्मका ही गुण समझते हैं, तो इसका उत्तर श्रीमद्भागवतमें ही पाया जायगा। अव्ययत्व, नित्यत्व और अजत्व ये सब अद्वयज्ञान परतत्त्वके समस्त चित्-प्रकाशोंके ही स्वतःसिद्ध गुण हैं—जैसे गीतामें—

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं, त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वत-धर्मगोप्ता, सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे॥

जहाँ परम ब्रह्मको अक्षर परमब्रह्म कहा गया है, वहाँ 'ईश्वरः परमः कृष्णः' को ही परम ब्रह्म समझना चाहिए। श्रीकृष्णको कहीं भी क्षर जीवतत्त्वके समान नहीं बतलाया गया है। डा० राधाकृष्णन् ही क्यों, ब्रह्मा और इन्द्रादि बड़े-बड़े अधिकारिक देवता भी क्षरतत्त्व अर्थात् जीव कोटिके अन्तर्गत परिगणित हैं। उन्होंने (भगवानने) अपनी विभिन्न शक्तियोंके द्वारा अनन्त कोटि विश्व-ब्रह्माण्डको धारण कर रखा है। जैसे आग एक जगह स्थित रह कर भी अपनी नाना प्रकारकी शक्तिओंका परिचय दिया करती है, वैसे ही भगवान श्रीकृष्ण अपना पूर्ण व्यक्तित्व नित्यत्व, अव्ययत्व और अजत्व अक्षुण्ण रखते हुए भी जीव कोटि विष्णु कोटि, मायाशक्ति, चिच्छक्ति और तटस्था शक्ति आदि नाना प्रकारसे अपना विस्तार किया करते हैं। इससे उनके पूर्णत्वकी हानि नहीं होती। 'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते, यही उपनिषद्का विचार है। वे शाश्वत पुरुष हैं और उनका नाम, रूप, गुण, लीला और परिकर वैशिष्ट्य सब कुछ नित्य शाश्वत अव्यय तत्त्व है। 'पुरुष'-शब्दका अर्थ भोक्तासे है। भोक्ता कभी भी निराकार, नपुंसक नहीं हो सकता। वे निर्गुण होकर भी गुण-भोक्ता हैं। वे मायिक त्रिगुणसे रहित होकर भी चिद्गुणोंके भोक्ता हैं।

डाक्टर राधाकृष्णनने अक्षर शब्दका अर्थ अव्यय किया है। अर्जुनने भगवान् कृष्णको आदि पुरुष, अक्षर और परमब्रह्म आदि शब्दोंसे सम्बोधित किया है। अतएव डा० राधाकृष्णन्ने किस विचारसे श्रीकृष्णमें देह-देहीका भेद माना है—समझमें नहीं आता। डा० राधाकृष्णन्ने अपनी पुस्तकमें (पृष्ठ-२७५) अर्जुनका नाम देकर यह स्वीकार किया है कि श्रीकृष्ण ही स्वयं परमब्रह्म एवं भगवान् हैं; वे ही अद्वय ज्ञान भगवान् हैं, इत्यादि।

उपरोक्त पृष्ठ २७५ में डा० राधाकृष्णन्ने अर्जुनके नामसे कृष्णके सम्बन्धमें बेतुकी बातें लिखी हैं। जैसे—"Arjuna states that supreme (Sri Krishna) is both Brahman, Iswara, Absolute God." यदि डा० राधाकृष्णन तत्त्व-वस्तुके सम्बन्धमें ऐसी असम्पूर्ण धारणा रखते हैं कि भगवान् ब्रह्मसे पृथक् हैं, तो वे गीताका पाठ कैसे करते हैं—यह कहना कठिन है। उनके मतानुसार भगवान् या परमेश्वर श्रीकृष्ण मायिक तत्त्व हैं—ब्रह्म नहीं। इसलिये ऐसा अर्थ करने वालोंको श्रीकविराज गोस्वामीने बड़ा धिक्कारा है—

ब्रह्म, आत्मा, भगवान्—कृष्णेर विहार।
ए अर्थ ना जानि, मूर्ख अर्थ करे आर॥
(चै० च० आ० २।६०)

परन्तु हमलोग परम्पराके अनुसार अर्जुनको अथवा श्रील कविराज गोस्वामीको ही डा० राधाकृष्णन्से अधिक समीचीन स्वीकार करेंगे। इसका कारण यह है कि इस युगमें अर्जुनने ही साक्षात् रूपमें श्रीगीताकी वाणियोंका श्रवण किया है। और 'श्रीचैतन्यचरितामृत' को स्वयं राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र-प्रसादने प्रामाणिक ग्रन्थ स्वीकार किया है। अर्जुन-

की परम्पराके अनुसार जो गीता समझेंगे वे ही यथार्थ रूपमें गीता पढ़ते-सुनते हैं। इसके अतिरिक्त—'आर सब मरे अकारण'। श्रीगीतामें निर्विशेष ब्रह्मके सम्बन्धमें क्या कहा गया है, यह भी ध्यान देने योग्य है। निर्विशेष ब्रह्म भगवान्‌की अङ्गकान्ति हैं, यह शास्त्र-सिद्ध सिद्धान्त है; जैसे सूर्यकी रश्मियाँ सूर्यकी अङ्गकान्ति हैं। सूर्य-रश्मि जैसे सूर्यके अधीन तत्त्व है, उसी प्रकार निराकार ब्रह्मज्योति भी श्रीकृष्णकी अङ्ग-कान्ति और उनके आधीन तत्त्व है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम् अमृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ही निर्विशेष ब्रह्मके आधार हैं–गीतामें यह बात स्पष्ट रूपमें लिखी होने पर भी डा० राधाकृष्णन्‌को पसन्द नहीं आयी है। वे ऐसा कहनेके लिये बाध्य हुए हैं—

For I (Shri Krishna)am the abode of Brahman, the immortal and the imprishable feternal law and absolute bliss.'

यदि श्रीकृष्ण निर्विशेष ब्रह्मके आधार हैं, तब निराकार ब्रह्मसे वे अत्यन्त बड़े और श्रेष्ठ हैं—इसे अस्वीकार करनेकी गुंजाइश नहीं है। घरके भीतर मच्छड़दानी होती है, मच्छड़दानीके भीतर घर नहीं होता। मेजके ऊपर दावात होती है, दावातके भीतर मेज नहीं होती। इतनी सहज और सरल बात तो साधारण बालक भी समझ सकता है; परन्तु डा० राधाकृष्णन्‌ने इस विषयमें क्यों बेतुकी बातें की हैं, यह समझना कठिन है। भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण, शुद्ध, नित्य, मुक्त, शाश्वत पुरुष परमब्रह्म हैं;–गीतामें अनेकानेक प्रमाणोंके साथ इस बातकी पुष्टि की गयी है। परन्तु जैसे उल्लू सूर्यकी किरणोंको देख नहीं पाता, ठीक उसी प्रकार अपने वाक्‌जालसे उस भगवान-रूपी सूर्य को ढक कर अपने पाण्डिपूर्ण भाष्यसे विद्याके बदले अविद्याका प्रचार किया है। हम इसका अनुमोदन नहीं कर सकते। व्यत्तिरेक रूपमें हो अथवा अन्वय रूपमें हो, परम पुरुष श्रीकृष्ण ही ब्रह्मके आधार हैं, इस विषयमें डा० राधाकृष्णनने बहुत कुछ इधर-उधर टाल-बटोल करनेका प्रयत्न किया है, परन्तु पकड़े गये हैं। यदि श्रीकृष्ण ही Absolute God ठहरते हैं, तब उनके भीतर फिर दूसरी कौन वस्तु हो सकती है, जिसके द्वारा डा० राधाकृष्णन ऐसा कह सकते हैं कि,—It is not the personal Krishna to whom we have to give owrselves up ete.

असल बात यह है कि, भगवान्‌की कृपा नहीं होने से भगवत्तत्त्व जाना नहीं जाता, यह बात डा० राधाकृष्णनकी पुस्तकसे पूर्णतया प्रमाणित होती है। मायावादी लोग भगवानके चरणोंमें महा अपराधी होते हैं। अतएव उनके निकट किसी दिन भी भगवान् प्रकट नहीं होते—'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः' (गीता ७।२५)। मायावादीको समस्त आचार्योंने अपराधी कहा है; परन्तु श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने निर्विशेष या निराकर मायावादियोंको सीधे अपराधीकी संज्ञा दी है। "मायावादी-भाष्य सुनिले हय सर्वनाश"। 'श्रीचैतन्यचरितामृत' ग्रन्थमें श्री चैतन्यमहाप्रभुजीने इस प्रकार कहा है—

'प्रभु कहे—मायावादी कृष्णे अपराधी ।
ब्रह्म, आत्मा, चैतन्य कहे निरवधि ॥
अतएव तार मुखे ना आइसे कृष्णनाम ।
कृष्णेर 'नाम', कृष्णेर 'स्वरूप' दुइत समान ॥
नाम, विग्रह, स्वरूप तिन एकरूप ।
तीने भेद नाहि तीन चैतन्य-स्वरूप ॥
'देह-देही' 'नाम-नामी' कृष्णे नाहि भेद ।
जीवेर धर्म, नाम, देह स्वरूप विभेद ॥
अतएव कृष्णेर नाम-देह—विलास ।
प्राकृत इन्द्रिय ग्राह्य नहे हय स्वप्रकाश ॥
कृष्णेर नाम कृष्णेर गुण कृष्णलीलावृन्द ।
कृष्णेर-स्वरूप सम, सब चिदानन्द ॥
(चै. च. म. १६।१२६-३९)

श्रीशङ्कराचार्यका अनुकरण करनेवाले जानबूझकर सम्प्रदायके खातिर जीवको परमब्रह्म भगवान्‌का अंश नहीं मानते। और वह अंश मायाद्वारा आवृत होता

है, तथा वह अंश कभी भी पूर्णब्रह्म नहीं होता अथवा पूर्णब्रह्म ही—परम पुरुष हैं—यह सब मायावादी स्वीकार नहीं करते। उनके 'घटाकाश-पटाकाश' न्यायके विकृत विचारके अनुसार जीव मुक्त होने पर ब्रह्मके साथ एक हो जाता है तथा उस मुक्तावस्थामें किसीका भी व्यक्तित्व नहीं रहता। इस विचारसे परम ब्रह्म आदि पुरुष जब अपने नित्यविग्रहको इस जगत्में प्रकट करते हैं, उस समय वे मूढ़ लोग भगवान्को भी साधारण जीव समझ कर उनमें देह-देहीका भेद आरोप कर अपराधी होते हैं। अतएव डा० राधाकृष्णनने श्रीकृष्णमें जो देह-देहीका भेद आरोप किया है, उससे वे जितने भी बड़े पण्डित क्यों न हों, वे 'माययापहृतज्ञानाः' हैं तथा श्रीमन्महाप्रभुके विचारसे महाअपराधी व्यक्ति हैं। अपराधी व्यक्ति कभी भी कृष्णकी कृपा प्राप्त नहीं होते। अपराधी व्यक्तियोंको ही गीतामें 'मूढ़' कहा गया है; क्योंकि वे श्रीकृष्णकी अवज्ञा करते हैं, और उनको साधारण मनुष्य मानकर उनमें देह-देहीका-भेद स्वीकार करते हैं। मायावादियोंके भगवद्-विद्वेषके प्रचार के विषमय फलसे, निरीश्वरवादियोंके उत्पातसे सम्पूर्ण जगत् आज नरक सा हो गया है। इन अपराधियोंके कवलसे जीवोंका उद्धार करना ही चैतन्य-महाप्रभुके प्रचारका वैशिष्ट्य है। जो इस विषयमें निश्चेष्ट हैं, वे सब श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणोंमें अपराधी हैं। मायावादीगण आध्यात्मिकताका जितना भी ढोंग क्यों न रचें, उनके समान भौतिकवादी दूसरा कहीं भी नहीं मिल सकता। उनका वैराग्य—फल्गुवैराग्य जगतको विपथगामी करता है। वाक्चातुरी द्वारा लोगोंको मोहित कर वे केवल मात्र पार्थिव लाभ, पूजा और प्रतिष्ठाके दास हो पड़े हैं। आजके जगत्का मुख्य उद्देश्य भौतिक उन्नति हो पड़ा है। चेतनका सवाद, चेतनका विश्वास उनके कर्ण-कुहरमें प्रवेश नहीं कर पाता। ऐसे-ऐसे छलपूर्ण धर्मोंको ही श्रीमद्भागवतमें 'कैतव-धर्म' कहा गया है। जो कैतवधर्मके प्रति आकृष्ट हैं,वे वंचक और वंचित सम्प्रदाय हैं। कहाँ मुक्ति और कहाँ भक्ति–उनकी आध्यात्मिकता' केवल एक वाक्चातुरी मात्र होती है। ये आध्यात्मिक धुरंधरगण कोटि-कोटि जन्मोंमें भी कृष्णको नहीं जान सकते हैं।

मायावादी जब कपटतावश भगवानके नाम-कीर्त्तन या भागवत पाठके द्वारा प्रतिष्ठा संग्रह करते हैं, उस समय भी वे अपराधके प्रभावसे ब्रह्म, चैतन्य, परमात्मा आदि शब्दोंका उच्चारण करने पर भी कृष्ण-नामका उच्चारण नहीं कर पाते। श्रीगीतामें सब जगह 'श्रीकृष्ण उवाच' का उल्लेख है। परन्तु मायावादी कृष्णनामको छोड़ कर और सब कुछ कहनेके लिए लिये प्रस्तुत हैं। ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा ये सभी नाम श्रीकृष्णको ही उद्देश्य करते हैं, फिर भी 'कृष्ण' ही परमब्रह्मका मुख्य नाम है—इसे समस्त शास्त्र स्वीकार करते हैं। अतएव मायावादी लोग यद्यपि कभी-कभी गोविन्द, माधव, कृष्ण, हरि और मुरारी आदि नामोंका उच्चारण करते हैं, तथापि उनको मुख्यनाम अथवा भगवान्से अभिन्न नहीं मानते तथा उस नामोच्चारण-को तात्कालिक साधन मात्र ही मानते हैं। वैसे नामोच्चारणको वे लोग नामापराध नहीं स्वीकार करते। नामापराधके समय नाम-नामीको अभिन्न न मानकर कृष्णमें देह-देहीका भेद स्वीकार कर वे और भी अधिक अपराधी हो पड़ते हैं।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

(गीता ९।११)

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए डा० राधाकृष्णनने लिखा है—The deluded desp se me clad in human body not knowing My higher nature as Lord of all existence. अतः Lord of existence जो व्यक्ति हैं वे clad in human body अर्थात् मायिक आँखोंसे या प्राकृत आँखोंसे मनुष्यमात्र हैं और तात्त्विक या शास्त्रीय आँखोंसे सर्वकारण-कारण परमेश्वर हैं। यदि deluded या विभ्रान्त लोग भगवान् श्रीकृष्ण की अवज्ञा करते हैं—यदि यह सत्य है, तब डा० राधाकृष्णन् क्या उस दोषसे दूषित नहीं हुए ? वे

Lord of existence की साधारण मनुष्यके साथ तुलनाकर किस प्रकार अपराधी हो पड़े हैं, इसे वे स्वयं अनुभव करें। इतने बड़े पण्डित होकर भी जो deluded अर्थात् विभ्रान्त होते हैं, वे लोग हो 'माययापहृतज्ञाना:' हैं, भगवद् विद्वेषी हैं, या आसुरीभावोंसे युक्त हैं।

पूर्व-पूर्वके समस्त अचार्योंने श्रीकृष्णको स्वयं भगवान् स्वीकार किया है। श्रीशंकराचार्यने भी स्वीकार किया है। इतना होने पर भी डा० राधाकृष्णन् यदि श्रीकृष्णको स्वयं भगवान् नहीं मानकर साधारण जीव समझते हैं अथवा उनको असाधारण मनुष्य मानते हैं, तो वे विभ्रान्त deluded के अतिरिक्त और क्या हो सकते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु से किसीको भी अधिक ज्ञान नहीं हैं। श्रीकृष्णका विज्ञान समन्वित ज्ञान श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके निकट ही जानना होगा। क्या डा० राधाकृष्णनने श्रीचैतन्य महाप्रभुकी परम्परामें श्रीजीवगोस्वामीकी विचार-धाराका अनुशीलन किया है? हम लोग उनसे अनुरोध करते हैं कि वे श्रीजीवगोस्वामी प्रभुके 'षट्सन्दर्भ' का भलीभाँति अनुशीलन करें। उनके जैसे विद्वानोंको समझानेके लिये ही श्रीजीवगोस्वामी प्रभु अपने गुरुवर्ग द्वारा शक्ति संचारित पुरुष हैं। श्रीजीवगोस्वामी पृथ्वीभरमें सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक हैं। उनके जैसा विराट दार्शनिक पृथ्वी भरमें कहीं भी नहीं हैं, नहीं था और न होगा। हम आशा करते हैं, स्वयं एक दार्शनिक होनेके नाते डा० राधाकृष्णन् श्रीजीवगोस्वामीके वचनोंको कभी भी अस्वीकार न कर सकेंगे।

डा० राधाकृष्णन् श्रीकृष्ण-तत्त्व समझने जाकर किस प्रकार perplexed हुए हैं, यह उनकी एक पुस्तकसे पता चलता है। वे श्रीकृष्णको भारतवर्षका एक ऐतिहासिक असाधारण मनुष्य कहना चाहते हैं, किन्तु श्रीगीतामें इसका तनिक भी अवकाश नहीं हैं। वे लिखते हैं—

"In the Gita Krishna is identified with the supreme Lord, The unity that he is behind the manifold universes, the changeless truth behind all appearances, transcendent over all and immanent in all. He is the manifested Lord, making it easy for the mortals to know, for those who seek the imperishable Brahman reach Him no doubt but after great toil. He is called Permatma.

उन्होंने अपने विभ्रान्त होनेका कारण इस प्रकार लिखा है—

How can we identify an historical individual with the supreme God ? The representation of an individual as indentical with the universal self is familiar to Hindu thought. In the upanishads, we are informed that the fully awakened soul which apprehends the true relation to the Absolute-sees that it is essentially one with the latter and declares itself to be so. (Essay-Page 30)

Essentially one अर्थात् जीव और भगवान्के एकत्वकी उपलब्धि ही चरम कथा नहीं है। अवश्य शंकराचार्यजीने आसुरी भावापन्न लोगोंको यहाँ तक उपलब्धि करवानेके लिये ही ऐसा उपदेश दिया था। परन्तु इसके और आगे चेतन राज्य 'चेतनश्चेतनानाम्' का दर्शन है। चेतनराज्यमें प्रवेश कर पूर्णचेतनका जो दर्शन होता है, उसे न पाने तक चेतन-वस्तुका ज्ञान असम्पूर्ण, असम्यक और अविशुद्ध होता है, जो अशुद्ध बुद्धिका परिणाम है। वैसे अपूर्ण और खण्ड-चेतनके ज्ञानके कारण बड़े बड़े दार्शनिक पुनः जड़ीय ज्ञान-वैचित्र्यमें ही अधःपतित होकर दार्शनिक पदसे च्युत हो पड़ते हैं तथा राजनैतिक बीर, कर्म-जड़-बीर धर्म-

अर्थ-काम-परायण-वीर आदि अनेक रूपोंमें सज्जित होकर प्रकाशित होते हैं।

डा० राधाकृष्णन्‌का उन पूर्ण-चेतनके साथ परिचय नहीं रहनेके कारण उनकी आँखोंके सामने विद्यमान रहने पर भी वे उनको (पूर्ण चेतनको) ऐतिहासिक व्यक्ति समझकर deluded हो रहे हैं। भारतीय दार्शनिकोंको भगवानके साथ जैसे एकत्वका विचार है, वैसे ही उनको भगवान्‌से पृथकत्वका विचार भी है एक ही वस्तु एक ही समयमें एकत्व और पृथकत्वके विचारमें प्रतिष्ठित है और वही विचार विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत अथवा अचिन्त्यभेदाभेदतत्त्वके नामसे प्रसिद्ध है। यदि वह विचार प्रबल नहीं होता, तो सम्पूर्ण भारतके घर-घरमें कृष्णकी पूजा नहीं होती। ऐतिहासिक पुरुषके रूपमें कृष्णकी कहीं भी पूजा नहीं होती। बल्कि सर्वत्र भगवानके रूपमें ही श्रीकृष्णकी पूजा होती है। और उस भगवत्ताके मध्यस्थ हैं—प्रामाणिक ग्रन्थ गायत्री और वेदान्तके अकृत्रिम भाष्य 'श्रीमद्भागवतम्'। डा० राधाकृष्णनसे भी अधिक बड़े-बड़े दार्शनिकों और मायावादियोंके आक्रमणके बावजूद भी भारतमें सर्वत्र कोटि-कोटि कृष्णके मंदिर युग-युगान्तोरोंसे लेकर अबतक विद्यमान रहकर कृष्णको मनुष्य माननेवालोंको धिक्कार रहे हैं और भविष्यमें भी धिक्कारते रहेंगे। समस्त विष्णु-मन्दिर आचार्योंके अनुमोदित हैं। अतएव डा० राधाकृष्णनके खातिर भारतवासी पाश्चात्य दार्शनिक-विचारोंके साथ कभी भी Compromise या मेल नहीं कर सकते।

भारतीय ऐतिहासिक गगनमें बहुतसे बड़े-बड़े ऐतिहासिक नक्षत्रोंका उदय होता आया है। उन बड़े बड़े ऐतिहासिक पुरुषोंको छोड़कर केवल राम और कृष्णको ही भारतियोंने क्यों भगवान स्वीकार किया, इसका निरपेक्ष रूपसे विवेचन करनेके लिये पूर्व-पूर्वके आचार्योंको हम डा० राधाकृष्णन्‌की अपेक्षा अधिक प्रतिभाशाली समझते हैं। ब्रह्मलोक-वासी और स्वर्गलोकके निवासी भी कृष्ण-तत्त्वके सम्बन्धमें मोहित हो पड़ते हैं। अतएव मर्त्यलोक निवासी डा० राधाकृष्णन् अथवा उनके जैसे दूसरे लोग भी उस विषयमें, मोह प्राप्त होंगे—इसे तो 'श्रीमद्भागवत' में ही 'मुह्यन्ति यत् सुरयः' श्लोकमें स्वीकार किया है। चतुर्दश ब्रह्माण्डमें 'भूलोक' तो सातवीं श्रेणीकी नगण्य विभूतिसम्पन्न एक वसुधा मात्र है।

परन्तु इस नगण्य वसुधामें भारतवर्ष ही सर्वश्रेष्ठ स्थान है। क्योंकि भारतवर्षके मनीषिवृन्द प्राचीनकालसे पारमार्थिक विचारके सम्बन्धमें विश्वका पथ प्रदर्शन करते आये हैं। प्राचीनकालमें वे दूसरे-दूसरे उत्तम विभूतिसम्पन्न वसुधाओंके साथ परस्पर सम्बन्ध रखनेमें समर्थ थे। कहा नहीं जा सकता, हो सकता है, भविष्यमें स्पूतनिकोंके द्वारा पुनः वैसा सम्बन्ध स्थापित हो जाय। परन्तु हमारे भारतका ऐसा दुर्भाग्य है कि हम अपने पूर्व-पूर्व आचार्योंकी बातें सुननेके लिये प्रस्तुत नहीं हैं। श्रीकृष्णको ऐतिहासिक व्यक्ति तो स्वीकार करेंगे, परन्तु उनकी वाणियोंको स्वीकार न किया जा सके उसके लिये हर प्रकारसे कौशल आदि द्वारा वाक्यजाल विस्तार करते हैं। यही भारतके दुर्भाग्यका परिचय है। यथार्थ भगवानको ताकके ऊपर रख कर नकल भगवानके उत्पात्‌का विस्तार करनेके लिये भारत इस समय जोरोंसे प्रयत्नशील है—यही भारतके दुर्भाग्यका परिचय है। (क्रमशः)

—श्रीअभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त

विविध-संवाद

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें झूलन-उत्सव

श्रीगौड़ीय-वेदान्त-समितिके उद्योगसे श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें इस वर्ष ८ भाद्र, सोमवारसे १२ भाद्र, शुक्रवार तक पाँच दिन श्रीश्रीराधाविनोदविहारी-जीका झूलन-उत्सव खूब धूमधामसे मनाया गया है। सभामण्डप, रत्नमय हिंडोला और श्रीमन्दिर नाना-प्रकारकी आलोकमालाओं, विविध प्रकारके बहु-मूल्य रङ्ग-बिरंगे वस्त्रों तथा पुष्प-मालाओंसे सुसज्जित होकर दर्शकोंके मन और प्राणको मोहित कर रहे थे।

नाट्य मंदिरमें श्रीगोवर्द्धन और मथुराकी परि-क्रमा आदिकी प्रतिदिन नयी-नयी भव्य-झाँकियाँ दर्शकोंके चित्त-पट पर श्रीकृष्णलीलाकी मधुर स्मृतियाँ अंकित कर रहीं थी। झूलेका यह मनोमुग्धकारी दृश्य मथुरा भरमें अद्वितीय था। शामको ६ बजेसे रातके ११ बजे तक दर्शकोंकी बड़ी भीड़ लगी रहती थी। श्रीश्रीराधाविनोद विहारीजी अपने त्रिभुवन मोहन दिव्य दर्शनोंसे सबका मन मोहित कर रहे थे। दर्शक उनकी रूप माधुरीका पान कर ठगेसे रह जाते थे।

श्रीबलदेव-आविर्भाव

गत १२ भाद्र शुक्रवार, झूलन पूर्णिमाके दिन बलदेवकी आविर्भाव-तिथि मनाई गयी है। उस दिन वैष्णवमात्रको निरम्बु उपवास रह कर व्रतका पालन करना कर्त्तव्य है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभ्यवर्ग प्रति वर्ष इस उत्सवका अत्यन्त आदर और श्रद्धासे पालन करते हैं। शाम तक निरम्बु उपवास कर संध्याके पश्चात् अनुकल्प ग्रहण कर तथा निरंतर हरिसंकीर्त्तन करते हुए उक्त व्रतका पालन करते हैं। किन्तु बड़े खेदकी बात है कि कुछ गौड़ीय वैष्णवजन भी इस महान व्रतकी उपेक्षा करके श्रीबलदेव गुरु-पादपद्मकी कृपासे वंचित रह कर क्रमशः क्षीण-भजन हो पड़े हैं। वे लोग 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' इस श्रुतिमंत्रको भूल गये हैं। शामको श्रीमद्भागवत-से बलदेव आविर्भाव-प्रसङ्ग पाठ और कीर्त्तन हुआ। दूसरे दिन १३ भाद्रको प्रातः ६-३१ मिनटके पूर्व बलदेवव्रतका पारण किया गया है।

श्रीश्रीजन्माष्टमी और नन्दोत्सव

गत २० भाद्र, ६ सितम्बर शनिवारको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शाखामठ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें श्रीश्रीजन्माष्टमीका व्रतोपवास अनुष्ठान बड़े समारोहसे मनाया गया है। श्रीमठ-प्रांगण और मंदिर विविध प्रकारके रंग-बिरंगे वन्दनवारों, पता-काओं तथा नाना प्रकारके बहुमूल्य वस्त्रों एवं पुष्प मालाओंसे सजाये गये थे। नाट्य-मंदिर रङ्ग-बिरङ्गी आलोक-मालाओंसे जगमगा रहा था। उसमें विचित्र कलाओंसे युक्त अतीव मनोरम झाँकियाँ प्रस्तुतकी गयीं थीं, जो दर्शकोंके चित्तको बरबस आकर्षित कर कृष्णलीलाके मधुर भावोंसे ओत-प्रोत कर देती थीं। वे झाँकियाँ थीं—श्रीकृष्णका आविर्भाव, वसुदेव और देवकी द्वारा चतुर्भुज कृष्णकी प्रार्थना, कृष्णको लेकर वसुदेवजीका नन्द-भवनको गमन और आगमन तथा कंसके हाथोंसे छूट कर महामायाका आकाशमें उड़ जाना। ये झाँकियाँ लोगोंको बड़ी ही प्रभावित कर रही थीं। सर्वोपरि श्रीश्रीराधाविनोद विहारीजीकी अतुलनीय रूप-राशि सबको मुग्ध कर रही थी।

उस दिन प्रातःकाल मङ्गल-आरति और कीर्त्तनके बादसे आधी रात तक ध्वनि-बर्द्धक यंत्र (माइक्रोफोन) की सहायतासे श्रीमद्भागवतका पारायण और बीच-बीचमें संकीर्त्तन होता रहा। सभामण्डप सारा दिन दर्शकों और श्रोताओंसे खचाखच भरा रहा। संध्या-रतिके पश्चात् श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्पादक—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज और बैक-टू-गौड-हेडके सम्पादक—श्रीयुत अभय-

चरण भक्ति वेदान्तजीने श्रीकृष्ण जयन्तीके सम्बन्धमें भाषण दिये।

आधी रातके समय विराट संकीर्त्तन और जय-ध्वनिके बीच श्रीकृष्णका अर्चन-पूजन और भोग-राग विधिवत् सम्पन्न हुआ। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके दिन निमंत्रित और अनिमंत्रित सैकड़ों व्यक्तियोंको विविध प्रकारका महा प्रसाद वितरण किया गया। इस अवसर पर श्रीगोराचाँद ब्रह्मचारी, श्रीहरिदास दासाधिकारी, श्रीकुञ्जविहारीदास ब्रह्मचारी, श्रीरामेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीचितरंजन देवशर्मा और श्रीराम प्रसाद दास आदि मठके सेवकोंका उत्साह अतीव स्तुत्य रहा है।

श्रीश्रीराधाष्टमी

गत ३ आश्विन, २० सितम्बर, शनिवारको समस्त शक्तिओंकी मूल अंशनी महाभाव स्वरूपा श्रीश्रीराधारानीकी आविर्भाव तिथि त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति कुशल नरसिंह महाराजकी अध्यक्षतामें खूब धूम-धामसे मनायी गयी है। ऊषा-कीर्त्तनके पश्चात् श्रीभागवत-पत्रिकाके संघपति एवं 'Back-To-Godhead' के सम्पादक श्रीयुत अभयचरण भक्ति वेदान्तजीने 'श्रीचैतन्यचरितामृत'-ग्रन्थसे श्रीमती राधिकाजीका प्रसङ्ग पाठ किये तथा उस विषयमें बड़ा ही तात्त्विक और मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किये। तदनन्तर त्रिदण्डि स्वामी भक्ति-वेदान्त नारायण महाराजजी उपस्थित श्रद्धालु व्यक्तियोंके बीच बहुत देर तक हरिकथा परिवेषण करते रहे। इस समारोहमें जिन शिक्षित-संभ्रात और प्रतिष्ठित व्यक्तियोंने योग-दान किया था उनमेंसे श्रीयुत वृन्दावनदास, अध्यक्ष मथुरा नगरपालिका; श्रीयुत रामप्रसाद कमल, बी. ए. बी. एल. सिनियर उपाध्यक्ष, श्रीयुत सुरेन्द्र दास बी. ए. बी. एल.; श्रीयुत श्रीकृष्णचन्द्र दास और उनकी धर्मपत्नि श्रीमती मालती देवी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। विशेष उल्लेख योग्य यह है कि इस उत्सवका सारा खर्च श्रीयुत कृष्णचन्द्रदास और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मालती देवीने वहन किया है। ये दोनों रूर्व-प्रकारसे मठकी सेवा करनेके कारण समितिके धन्यवादके पात्र हैं। दोपहरमें सैकड़ों व्यक्तियोंको विचित्र-महाप्रसाद वितरण किया गया।

—प्रकाशक

जैव-धर्म

(पूर्व प्रकाशित वर्ष ४, संख्या ३, पृष्ठ ७२ से आगे]

सत्रहवाँ अध्याय

प्रमेयके अन्तर्गत मायासे मुक्त जीवोंका विचार

व्रजनाथकी पितामहीने व्रजनाथके विवाहकी सारी व्यवस्था पूरी कर ली है। रातमें व्रजनाथको उन्होंने सारी बातें बताईं। व्रजनाथने उस दिन कुछ भी उत्तर न दिया। वे खा-पी कर लेटे-लेटे शुद्धजीवकी अवस्थाके सम्बन्धमें बड़ी रात तक चिन्तन करते रहे। उधर उनकी वृद्धा पितामही इस बातकी चिन्तामें मग्न थीं, कि व्रजनाथको विवाहके लिये कैसे तैयार किया जाय। उसी समय व्रजनाथके मौसेरे भ्राता वेणीमाधव उपस्थित हुए। जिस लड़कीके साथ विवाहकी बातचीत चल रही है, वह वेणीमाधवकी फूफेरी बहन है। विजय-विद्यारत्नने कन्याका सम्बन्ध पक्का करने के लिये उन्हें भेजा है।

वेणीमाधवने कहा—'दादी! आखिर बात क्या है? व्रज भैयाके विवाहमें देर क्यों कर रही हो?'

व्रजनाथकी पितामहीने जरा दुःखित होकर कहा—

'बेटा ! तू बड़ा समझदार लड़का है, जरा ब्रजनाथको समझा-बुझाकर विवाहके लिये राजी करा दे। मैं जितना भी समझाती हूँ, वह बात ही नहीं सुनता।'

बेणीमाधवका ठिगना कद, छोटी गर्दन, काला रंग और मीचमीची आँखें उनके स्वरूपको प्रकट कर देती हैं। वे सभी बातोंमें हैं अथच किसीभी बातमें नहीं हैं। वृद्धाकी बात सुनकर वे जरा माथे पर बल देते हुए बोले—कुछ परवाह नहीं। तुम्हारी आज्ञा भरकी देर है, बेणीमाधव क्या नहीं कर सकता? तुम तो मुझे खूब जानती हो—लहरोंको गिन-गिन कर पैसा वसूल करता हूँ। अच्छी बात है, मैं एक बार ब्रजनाथसे बातचीत करके तो देखूँ। किन्तु दादी! कार्य हो जाने पर मुझे भर पेट पूड़ी-कचौड़ी खिलाओगी तो?

दादी बोली—'ब्रजनाथ तो खा-पीकर सो गया है।'

'अच्छी बात है, मैं कल सवेरे आकर सब कुछ ठीक कर लूँगा'—ऐसा कह कर वे घर चले गये।

दूसरे दिन बड़े सवेरे हाथमें एक लोटा लेकर वे वहाँ उपस्थित हैं। ब्रजनाथ शौच आदिसे निवृत्त होकर बाहर चण्डी-मण्डपमें बैठे हैं। उन्होंने बेणीमाधवको देखकर कहा—'भाई, आज इतने सवेरे कैसे?'

बेणीमाधवने कहा—'दादा! तुमने तो अनेक दिनों तक न्यायशास्त्र पढ़ा और पढ़ाया; तुम पं० हरिनाथ चूड़ामणिके पुत्र हो—तुम्हारा नाम देश भरमें विख्यात हो गया है; घरमें तुम्हीं एकमात्र पुरुष हो—यदि सन्तान-सन्तति न हो तो तुम्हारे इतने बड़े घर की कौन रक्षा करेगा? भाई! हमलोगोंका अनुरोध है—तुम विवाह करो।'

ब्रजनाथ बोले—'भाई! मुझे व्यर्थ ही जलाओ नहीं। आजकल मैं श्रीगौरसुन्दरके भक्तोंका आश्रय ग्रहण कर रहा हूँ; मुझे संसार करनेकी इच्छा नहीं है। मायापुरमें वैष्णवोंके निकट बैठ कर बड़ी शान्ति पाता हूँ। मुझे संसार अच्छा नहीं लगता—मैं या तो संन्यास ग्रहण करूँगा, अथवा वैष्णवोंके पदाश्रित बन करके रहूँगा। तुम्हें अपना अन्तरंग जानकर अपने हृदयकी बात कह रहा हूँ। तुम इस बातको कहीं प्रकाश न करना।'

बेणीमाधवने मन-ही-मन सोचा कि इनको सीधे रास्तेसे नहीं पाया जायगा—इनके साथ एक चाल चलनी पड़ेगी। ऐसा सोच कर चालाकीसे अपने अपने मनके भावोंको दबा कर वे बोले—'मैं तुम्हारे प्रत्येक कार्यमें सदासे ही सहायक रहा हूँ; जब तुम संस्कृत पाठशालामें पढ़ते—मैं तुम्हारी पुस्तकोंको वहन कर पाठशाला ले जाया करता, अब जब तुम संन्यास लोगे, मैं तुम्हारा दण्ड-कमण्डलु भी वहन करूँगा।'

धूर्त्तलोगोंकी दो जिह्वाएँ होती हैं। एक से वे एक प्रकारकी बात करते हैं और दूसरोंसे दूसरी प्रकारकी बातें करते हैं। उनके हृदयकी बातोंका पता लगाना कठिन होता है; मुखमें राम बगलमें छुरी।

बेणीमाधवकी मीठी बातोंको सुनकर ब्रजनाथने कहा—'भाई! मैंने तुमको सदैव अपना परम बन्धु समझा है। स्त्री होनेके नाते दादी गम्भीर विषयोंमें प्रवेश नहीं कर पातीं। किसी लड़कीको मेरे गलेमें बाँध कर मुझे संसार-समुद्रमें डुबो देनेके लिये वे बड़ी लालायित हैं। तुम यदि समझा-बुझाकर उन्हें इस कार्यसे रोको, तो मैं तुम्हारा चिर-ऋणी रहूँगा।'

बेणीमाधवने कहा—'शर्मारामके रहते-रहते कोई भी तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता। दादा! एक बात जरा खुल कर बतलाओ तो, इसके बाद देखो तो मैं क्या करता हूँ। मैं पूछता हूँ, संसारके प्रति तुम्हारी घृणा क्यों हो रही है? किसकी परामर्श से तुममें इस प्रकारकी विरक्तिका भाव पैदा हो रहा है?'

ब्रजनाथने अपने वैराग्यकी सारी घटना बेणीमाधवको सुनायी; और यह भी बतला दिया कि—'मायापुरमें एक बड़े-बूढ़े और अनुभवी बाबाजी हैं उनका नाम रघुनाथदास बाबाजी है। वे ही मेरे उपदेशक हैं—प्रतिदिन संध्याके पश्चात् मैं उनके चरणोंमें उपस्थित होकर संसारकी ज्वालासे शान्ति लाभ करता हूँ। वे मुझ पर बड़ी कृपा करते हैं।'

दुष्ट बेणीमाधवने मन-ही-मन सोचा—'हाँ, ब्रज-दादाकी दुर्बलता कहाँ है, अब समझा; अब छल-बल

और कौशल से इन्हें सीधे रास्ते पर लाना है।' प्रकाश्य रूपमें कहा—'दादा! अभी घर जा रहा हूँ; कोई चिन्ता नहीं, मैं चुपके-चुपके दादीका मन फिरा दूँगा।'

वेणीमाधव अपने घरकी तरफ चले गये। परंतु घर न जाकर थोड़ी देर बाद ही दूसरे रास्तेसे वे मायापुर श्रीवास अंगनमें उपस्थित हुए। वहाँ बकुल वृक्षके नीचे चबुतरे पर बैठकर मन-ही-मन कहने लगे—'ये वैष्णव बेटे ही संसारका मजा लूट रहे हैं—कितने सुन्दर घर हैं, कैसे कुञ्ज हैं, कितना सुन्दर चबुतरा है और क्या ही मनोरम प्राङ्गण है। एक-एक भजन कुटीमें एक-एक वैष्णव बैठकर माला सटका रहे हैं। धर्मके साँड़-की तरह ये पूरे निश्चिन्त हैं। पल्ली-गावोंकी नारियाँ गंगा स्नानकर इनको बिना माँगे फल-मूल, जल और नाना प्रकारकी भोज्य-सामग्रियाँ दे जाती हैं। ब्राह्मणों ने कर्म-काण्डकी व्यवस्था करके ऐसे ही लाभोंके लिये मार्ग प्रस्तुत किया था, परन्तु उसका सार-भाग आज-कल बाबाजी-दल ही भोग कर रहा है। धन्य कलिकाल! कलिके इन चेलोंकी आजकल पौ-बारह है। हाय! मेरा कुलीन ब्राह्मणके घरमें जन्म लेना व्यर्थ हुआ। आजकल हमें कोई पूछता तक नहीं—जल देना और फल देना तो दूर रहे। आज हाल यह है कि वैष्णव-बेटे नैयायिक पण्डितोंको 'घटपटिया' मूर्ख बतलाते हैं। यह बात ब्रजदादाके ऊपर ठीक बैठती है। वे इतना पढ़-लिखकर भी लंगोटधारी दुष्टोंके हाथमें बिकसे गये हैं। मैं 'वेणीमाधव'—दादाको भी दुरुस्त करूँगा और उन बेटोंकी भी मरम्मत करूँगा।'—ऐसा सोचते-सोचते वे एक कुटीके भीतर प्रविष्ट हुए।

घटनाचक्रसे उस कुटीमें श्रीरघुनाथदास बाबाजी केलेके पत्तोंसे बने हुए आसन पर बैठ कर हरिनाम कर रहे थे। मनुष्यका स्वभाव उसके चेहरेसे झलकता है। वृद्ध बाबाजीने देखा, उस ब्राह्मण-कुमारके वेश साक्षात् कलिका आगमन हुआ है। वैष्णवजन अपनेको स्वभावतः तृणसे भी अधिक हीन समझते हैं, वे शत्रु के अत्याचारोंको सहन करके भी उनके कल्याणकी कामना रखते हैं। वे स्वयं अमानी होकर दूसरोंको मान दिया करते हैं। अतः बाबाजीने वेणीमाधवको आदरपूर्वक बैठाया।

वेणीमाधव नितान्त अवैष्णव होनेके कारण वैष्णव मार्यादाका उल्लघंन करके वृद्ध बाबाजीको आशीर्वाद देते हुए बैठे।

बाबाजी महाशयने पूछा—'बाबा! तुम्हारा क्या नाम है? तुम यहाँ पर किसलिये आये हो?'

अपने लिये 'तुम' शब्दका व्यवहार सुन कर वेणीमाधव जरा गर्म हो उठे। उन्होंने वक्रताके साथ कहा—'अरे बाबाजी! क्या कौपीन पहन लेनेसे ही ब्राह्मणोंके समान हुआ जा सकता है? खैर, जैसा भी हो, मैं तुमसे पूछता हूँ—'तुम लोग ब्रजनाथ न्याय पञ्चाननको जानते हो?'

बाबाजी—'कृपा करके अपराध क्षमा करें; मुझ वृद्धका वाग् दोष न धरें। ब्रजनाथ कभी-कभी कृपा करके यहाँ पधारते हैं।'

वेणीमाधव—'वह आदमी खूब सुविधेका नहीं है; दो चार दिन आकर विनयादिके द्वारा तुम्हें अपने वशमें करके जो करना होगा, करेगा। बेलपुकुरके ब्राह्मण तुम्हारे व्यवहारसे अत्यन्त क्षुब्ध हैं। उन लोगोंने परामर्श करके ब्रजनाथको तुम्हारे पास भेजा है। तुम बूढ़े हो—जरा सावधान रहना। बीच-बीचमें मैं तुम्हारे पास आकर उनके षड़यन्त्रकी खबर देता रहूँगा। मेरे सम्बन्धमें तुम उससे कुछ भी बतलाना नहीं; नहीं तो तुम्हारा और भी अधिक अनिष्ट होगा। आज मैं जा रहा हूँ।' ऐसा कह कर वेणीमाधव अपने घर चले गये।

दोपहरका समय है। ब्रजनाथ खाना खा कर बरामदे में बैठे हैं। इसी बीच वेणीमाधव कहीं से आकर उनके पास बैठ गये और बातों-बातोंमें बोले—'दादा! आज मैं कार्यवश मायापुर गया था। वहाँ एक बुढ्ढेको देखा—शायद वही रघुनाथदास बाबाजी होगा। उसके साथ बातचीत होते-होते तुम्हारा प्रसङ्ग भी छिड़ गया। उसने तुम्हारे सम्बन्धमें एक ऐसी घृणित बात कही कि वैसी बात कोई भी किसी ब्राह्मणके प्रति प्रयोग नहीं कर सकता। अन्तमें

बोले—'ब्रजनाथको ३६ जातिका जूठन खिला कर उसकी बामनाई ही निकाल दूँगा ।' छिः । तुम जैसे विद्वान् व्यक्तिको वैसे आदमीके पास जाना किसी भी प्रकारसे उचित नहीं है । इससे ब्राह्मण पण्डितोंकी प्रतिष्ठा धूलमें मिल जायगी ।'

वेणीमाधवकी बात सुन कर ब्रजनाथ बड़े आश्चर्यित हुए । वैष्णवोंके प्रति उनके हृदयमें जो श्रद्धाका भाव था एवं वृद्ध बाबाजीके प्रति जो भक्ति थी, न जाने क्यों वह दूनी हो उठी । वे कुछ गम्भीर होकर बोले—'भाई ! आज मैं व्यस्त हूँ, तुम घर जाओ; कल तुम्हारी बात सुन कर विचार करूँगा ।'

वेणीमाधव चले गये । ब्रजनाथ वेणीमाधवके दोमुखी स्वभावसे अच्छी तरह परिचित थे; प्रचुर न्याय पढ़े हुए थे, तथापि वे स्वभावतः दुष्टता पसन्द नहीं करते थे । संन्यासमें सहायता करेगा, यह सोच कर उन्होंने वेणीमाधवके प्रति बन्धुत्वका भाव दिखलाया था । परन्तु इन्हें पता चल गया कि वेणी-माधवने अपना कोई मतलब गाँठनेके लिये कुछ चिकनी-चुपड़ी बातें की थीं । सोचते-सोचते उन्हें स्मरण हो आया कि जिस कन्याका मेरे साथ विवाहकी बात चल रही है, उसमें वेणीमाधवका कुछ स्वार्थ है । इसीलिये वह मायापुरमें किसी दुरभिसन्धि का बीज बो आया होगा । ऐसा सोच कर वे मन-ही-मन भगवान्से बोले—'हे भगवन् ! गुरु और वैष्णवोंके चरणोंमें मेरी दृढ़ श्रद्धा बनी रहे; दुर्जन व्यक्तियोंके उत्पातसे कभी कम न हो जाय ।' इस प्रकार सोचते-सोचते शाम हो गयी । शाम होनेके पश्चात् वे बड़े ही व्याकुल चित्तसे श्रीवास अँगनमें पहुँचे ।

इधर वेणीमाधवके चले जानेके बाद बाबाजीने मन ही मन सोचा—'यह आदमी निश्चय ही ब्रह्मराक्षस है—'राक्षसाः कलिमाश्रित्य जायन्ते ब्रह्म-योनिषु ।' (चै० भा० आ० १६।३०१ धृत वराह पुराणे महेश वाक्य)—यह शास्त्र-वाणी इस व्यक्तिके विषयमें ठीक बैठती है । वर्णाहङ्कार, व्यर्थका अहङ्कार, वैष्णव-विद्वेष, और धर्म-ध्वजित्व का छाप इसके मुखमण्डल पर स्पष्टरूपसे अङ्कित है । कोताही गर्दन, मिचमीची आँखें और बातोंमें चतुरता इसके अन्तरका परिचय है । अहा ! ब्रजनाथ कैसा मधुर-स्वभावका व्यक्ति है और कहाँ यह व्यक्ति असुर-स्वभावका पुरुष है । हे कृष्ण, हे गौराङ्ग ! ऐसे दुर्जन व्यक्तियोंका सङ्ग कभी न मिले । आज ब्रजनाथको भी सावधान कर दूँगा ।'

ब्रजनाथ कुटीमें पहुँचते ही बाबाजीने बड़े प्यार-से 'आओ बाबा, आओ' कह कर उन्हें छातीसे लगा लिया । ब्रजनाथकी आँखोंसे भी आँसुओंकी धारा बहने लगी, गला रुद्ध हो आया । वे बाबाजीके चरणोंमें गिर पड़े ।

बाबाजीने ब्रजनाथको बड़े स्नेहसे उठाते हुए कहा—'आज सबेरे एक काले रङ्गके ब्राह्मण आये थे । वे कुछ उद्वेग-जनक बातें सुना गये हैं । क्या तुम उनको जानते हो ?'

ब्रजनाथ—'प्रभो । आप ही ने बतलाया है कि संसारमें अनेक प्रकारके जीव हैं । उनमेंसे कुछ लोग मत्सरतावश दूसरे जीवोंको व्यर्थ ही उद्वेग देकर सुखी होते हैं । हमारे वेणीमाधव भैया ऐसे-ऐसे लोगोंमें एक प्रधान पंडा हैं । यदि उनकी कोई चर्चा न हो तो बड़ी खुशी होगी । यथार्थ बात तो यह है कि आपसे मेरी निन्दा करना; मुझसे आपकी निन्दा करना और झूठ-मूठका दोषारोप कर परस्पर झगड़ा लगा देना ही उनका स्वभाव है । उनकी बातोंको सुन-कर आपने कुछ कान तो नहीं दिया ?'

बाबाजी—'हा कृष्ण ! हा गौराङ्ग ! मैं अनेक दिनोंसे वैष्णव-सेवामें नियुक्त हूँ—मैं उनकी कृपासे वैष्णव-अवैष्णव पहिचाननेकी शक्ति प्राप्त कर चुका हूँ । मुझे सब कुछ पता है—इस विषयमें मुझसे कुछ भी कहना नहीं होगा ।'

ब्रजनाथ—'उन सब बातोंको भूलकर आप कृपया यह बतलाइये कि मायासे बँधा हुआ जीव कैसे मुक्त होता है ?'

बाबाजी—'श्रीदशमूलके सातवें श्लोकमें तुम्हें अपने प्रश्नका उत्तर मिलेगा,—

यदा भ्रामं भ्रामं हरि-रस-गलद्-वैष्णव-जनं
कदाचित् संपश्यन् तद्नुगमने स्याद्रुचियुतः।
तदा कृष्णावृत्त्यात्यजति शनकैर्मायिक-दशां
स्वरूपं विभ्राणो विमल-रस-भोगं स कुरुते॥

(७वाँ दशमूल)

अर्थात संसारमें ऊँच-नीच योनियोंमें भ्रमण करते-करते जब हरि-रसमें मत्त वैष्णवका दर्शन प्राप्त होता है, तब मायाबद्ध जीवको वैष्णव-मार्गके प्रति रुचि उत्पन्न होती है। कृष्णनामका उच्चारण करते-करते धीरे-धीरे उनकी मायिक दशा दूर होती जाती है—जीव क्रमशः स्व-स्वरूप प्राप्त करता हुआ विमल कृष्ण-सेवा-रस आस्वादन करनेके योग्य होता है।

व्रजनाथ—'इस विषयमें दो-एक वेदका प्रमाण सुनना चाहता हूँ।'

बाबाजी—'वेदमें कहा है—

'समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमेति वीतशोकः॥(क)

(मुण्डक ३।१।२, श्वे० ८।७)

व्रजनाथ—"जब सेवनीय ईश्वरको देख पाता है, तब जीव सर्वथा शोक रहित होकर उनकी महिमाको प्रत्यक्ष कर लेता है—इस वाक्यसे क्या मुक्तिको समझना होगा ?"

बाबाजी—'मायाके बन्धनसे छुटकारा पानेका नाम ही 'मुक्ति' है। यह मुक्ति साधुसंग-प्राप्त पुरुषको अवश्य ही लभ्य है। परन्तु मुक्ति होनेके बाद जीवको जो महिमा प्राप्त होती है, वही अन्वेषण करने योग्य है।

'मुक्तिर्हित्वान्यथा-रूपं-स्वरूपेण व्यवस्थितिः'

(भा० २।१०।६) (ख)

—इस अर्द्धश्लोकमें यह बतलाया गया है कि—अन्यथा रूपका परित्यागकर स्वरूपमें अवस्थिति ही जीवका प्रयोजन (मुक्ति) है। जिस क्षण बन्धनसे छुटकारा होता है, उसी क्षण मुक्तिका कार्य समाप्त हो जाता है; परन्तु स्वरूपमें अवस्थित होकर जीवकी अनन्त क्रियाएँ प्रारंभ हो जाती हैं—यही जीवका मूल प्रयोजन है। आत्यन्तिक दुःख निवृत्तिको 'मुक्ति' कहा जा सकता है, परन्तु मुक्ति होनेके बाद चित्-सुखकी प्राप्ति रूप एक और भी अवस्था है। छान्दोग्योपनिषद्में उस अवस्थाका वर्णन है—

'एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय।
परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते॥
स उत्तम-पुरुषः स तत्र पर्यैति जक्षन् क्रीडन् रममाणः॥ (ग)

(छा० ८।१२।३)

व्रजनाथ—'मायासे मुक्त हुए पुरुषोंके क्या लक्षण हैं ?'

बाबाजी—'छान्दोग्योपनिषद्में मायामुक्त पुरुषोंके आठ प्रकारके लक्षण बतलाये गये हैं—

आत्माऽपहत-पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्प सोऽन्वेष्टव्यः॥'—(घ)

(क) पूर्वोक्त एक ही वृक्ष पर अवस्थित जीव माया द्वारा मोहित होकर शोक करते-करते पतित हो गया। जब कभी जीव सेवनीय वस्तु परमेश्वरका दर्शन करता है, तब शोक-रहित होकर अपनी कृष्णदासस्वरूप महिमाको लाभ कर लेता है।

(ख) जीव चित् स्वरूप—शुद्ध कृष्णदास है। अविद्यामें प्रवेश करना ही उसके लिये विरूप है। (यह विरूप ही अन्यथारूप है) इसका परित्याग कर स्वरूपमें स्थितिका नाम ही—मुक्ति है।—(श्रीमन्महा प्रभुकी शिक्षा)

(ग) जीव मुक्ति प्राप्त करके इस स्थूल और सूक्ष्म शरीरसे समुत्थान कर चिन्मय ज्योति—सम्पन्न अपने चिन्मय अप्राकृत स्वरूपमें स्थित हो जाता है। वह उत्तम पुरुष है। वह उसी चिद्धाममें भोग, क्रीड़ा और आनन्द-रूप संभोगादिमें मग्न हो जाता है।—(श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा)

(घ) आत्मामें आठ गुण होते हैं। आत्मा पापशून्य अर्थात् मायाकी अविद्या आदि पाप-प्रवृत्तियोंसे सम्बन्ध शून्य है। 'विजर' शब्दका तात्पर्य जराधर्म-रहित अर्थात् नित्यनूतन होता है। विमृत्यु—जिसका पतन न हो

व्रजनाथ—'मूल मंत्रमें कहा गया है कि संसारमें भ्रमण करते-करते जीव जब हरि-रस रसिक वैष्णव-का संग प्राप्त करता है, तभी उसका कल्याण उदय होता है—इस बातमें मेरा पूर्व पक्ष यह है कि, क्या ब्रह्मज्ञान, अष्टांग योग आदि शुभ कर्मोंके द्वारा अंतमें हरिभक्तिकी प्राप्ति नहीं होती ?'

बाबाजी—'श्रीभगवानने श्रीमुखसे कहा है—

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव वा ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ।
यथावरुन्धे 'सत्संगः' सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥
(श्रीमद्भा० ११।१२।१-२)

तात्पर्य यह कि योग, सांख्य-ज्ञान, स्मार्त्तधर्म, वेदाध्ययन, तपस्या, संन्यास इष्टापूर्त्त, दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, तीर्थ-भ्रमण और यम-नियम—यह सब कुछ मुझे वैसा वशमें नहीं करते, जैसा समस्त प्रकारकी असक्तियोंको नष्ट करनेवाला सत्संग मुझे वशमें कर लेता है। कहाँ तक कहूँ, अष्टांग-योग मुझे गौणरूपमें ही सन्तुष्ट कर सकता है; परन्तु सत्संग तो मुझे सम्पूर्णरूपसे वशमें कर लेता है। हरिभक्तिसुधोदय (८।५१) में कहते हैं—

यस्य यत्सङ्गतिः पुंसो मणिवत् स्यात् स तद्गुणः ।
स्वकुलर्द्ध्यैततो धीमान् स्वयूथान्येव संश्रयेत् ॥

अर्थात्, जिस व्यक्तिका जैसा संग होता है, उसमें भी ठीक वैसा ही गुण पैदा हो जाता है; जैसे मणिका जिस वस्तुसे स्पर्श होता है, उसी वस्तु जैसा रंग मणिका भी दीखने लगता है। इसलिये शुद्ध साधु पुरुषोंके संगसे शुद्ध साधु हुआ जा सकता है। साधु-संग समस्त कल्याणोंका मूल है। शास्त्रोंमें जो निःसंग होनेका उपदेश दिया गया है, वहाँ 'निःसंग' शब्दका तात्पर्य साधुसंग से है। साधुसंगको ही निःसंग कहा गया है। यदि अनजानमें भी सत्संग हो जाय तो उससे जीवका परम कल्याण होता है—

संगो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया ।
स एव साधुषु कृतो निःसंगत्वाय कल्पते ॥
(श्रीमद्भा० ३।२३।५५)

अर्थात् अज्ञानवश असत्पुरुषोंके साथ किया हुआ जो संग संसार-बन्धनका कारण होता है, वही संग अनजानमें भी यदि सत्पुरुषोंके साथ हो तो वही निः-संग कहलाता है। जैसे श्रीमद्भागवत ७।५।३२ में कहते हैं—

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।
महीयसां पाद-रजोभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥

अर्थात्, जब तक जीव अकिञ्चन, भगवत्प्रेमी, महात्मा, भगवद्भक्तों के चरणोंकी धूलमें स्नान नहीं कर लेता, तब तक समस्त अनर्थोंका नाश करनेवाले भगवच्चरणोंमें उसकी मति नहीं लगती।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥
(श्रीमद्भा० १०।४८।३१)

अर्थात्, गंगा आदि जलमय तीर्थों और मृतिका तथा शिलामय देवताओंकी तो बहुत दिनोंतक श्रद्धासे सेवा की जाय तब, वे पवित्र करते हैं, परन्तु संत-पुरुष तो दर्शनमात्रसे पवित्र कर देते हैं। (क्रमशः)

अर्थात् मृत्यु शून्य। विशोक याने शान्त अर्थात् शोकरहित। 'विजिघत्स' अर्थात् भोगवासनारहित; अपिपास अर्थात् अन्याभिलाष शून्य, केवलमात्र प्रियतमकी सेवाके अतिरिक्त अन्यकामनारहित। सत्यकाम शब्दसे कृष्णसेवाके उपयुक्त कामनाका बोध होता है, वैसी समस्त कामनाएँ निर्दोष होती हैं। सत्यसंकल्प अर्थात् जो कामनाएँ करते हैं, वे सिद्ध हो जाती हैं। (बद्धजीवमें इन आठ धर्मोंका अभाव होता है।)

—(श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा)